7 2

श्री श्याम परमार

जन्म : ग्राम सुन्दरसी (मालवा) में सन् १६२५ में। शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) तक। एल० टी० की उपाधि भी प्राप्त की हुई है। कार्य : कालिज-जीवन के आरम्भ में अनेक कविताएँ लिखीं। कुछ दिन कहानी और आलोचना के क्षेत्र में भी गति रही। प्रभाकर माचवे और गजानन माधव मुक्तिबोध के द्वारा दिशा-निर्देश। बचपन से ही चित्र-कला में रुचि। रंगों का आकर्षण वंशानुगत। आज पूर्णतः साहित्यिक क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाने पर भी यदा कदा ब्रुश थामकर रंगों की दुनिया में भी विचर लेते हैं। '४४ में जब अपनी जन्म-भूमि में लोक-गीत सुने तो बेहद प्रभावित हुए और तब से ही उनके संकलन और अध्ययन में प्रवृत्त। अब तक लगभग ३००० लोक-गीत और लोक-कथाएँ मालवा तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों से एकत्रित कर चुके हैं। साथ-साथ लोक-कथाओं के सम्बन्ध में अध्ययन भी चल रहा है। प्रकाशित रचना 'मालवी लोक गीत' तथा 'पत्र के टुकड़े' (कहानी संग्रह) 'भारतीय लोक-साहित्य' तथा 'हिन्दी-नाटकों की भूमि' (प्रेस में)। विशेष : आजकल पी-एच० डी० के लिए मालवी लोक-साहित्य पर थीसिस तैयार करते। इन दिनों उज्जैन में निवास करते हैं।

प्रस्तावना

'मालवी और उसका साहित्य' अपने विषय की प्रथम पुस्तक
। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की प्रेरणा से जीवन में
ध्ययन की जो दिशा निर्धारित हो चुकी है उसीके फलस्वरूप
स्तुत सामग्री पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो रही है।

यहाँ सब-कुछ अन्तिम नहीं है ; नवीन मान्यताओं और परि-
र्तनों के लिए काफी स्थान है। वस्तुतः यह तो विषय का आरम्भ
। मनन के क्षेत्र में इसका झुकाव सही-सही उद्देश्य की ओर
गा, इसी विश्वास के साथ मैंने इसे लिख डालने का द्रुत प्रयास
या है।

वर्षों से मालव-इतिहास का अनुसंधान करने वाले विद्वद्वर
सूर्यनारायण व्यास और महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह ने
तक को [illegible] कर कतिपय महत्त्वपूर्ण सुझाव
[illegible] । डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'
[illegible] न-विश्वास मिला है, उसे मैं
[illegible] मित्र लेफ्टिनेण्ट भूपेन्द्रकुमार
[illegible] लिखने के लिए प्रेरित किया।
[illegible] फलीभूत हो रही है। मैं उक्त
[illegible] ों [illegible] र स्वीकार करता हूँ।

अंग बन जाता है । भाषा की दृष्टि से उसका कुछ भाग ही स्वभावतः है ही । वस्तुतः इसके मानचित्र पर दृष्टि डालने से ही सहज में समझा जा सकता है कि यह पठार 'मालवा का पठार' इसलिए है कि इसमें मालव-जनपद का अधिकांश भाग सम्मिलित है ।

डॉ॰ यदुनाथ सरकार ने अपने 'इण्डिया ऑफ औरंगजेब' नामक ग्रन्थ में मालवा के विषय में लिखा है : "स्थूल रूप से दक्षिण में नर्मदा नदी, पूरब में बेतवा एवं उत्तर-पश्चिम में चम्बल नदी इस प्रान्त की सीमा निर्धारित करती थीं ।"[1] "पश्चिम में कांठल एवं बागड़ के प्रदेश मालवा को राजपूताना तथा गुजरात से पृथक् करते थे और उत्तर-पश्चिम में इसकी सीमा हाड़ौती प्रदेश तक पहुँचती थी । मालवा के पूर्व एवं पूर्व-दक्षिण में बुन्देलखण्ड और गोण्डवाना के प्रान्त फैले हुए थे ।"[2]

जहाँ तक कि विशेष जन, संस्कृति और भाषा का सम्बन्ध है, सीमा-विषयक उक्त मान्यता अनुचित नहीं है । इसमें किसी जनपद के लिए भाषा की दृष्टि से अनिवार्य एक संगठित रूप विद्यमान है । स्पष्ट है कि यह भाग सम्पूर्ण मालव-पठार का सूचक नहीं, उसका एक टुकड़ा-मात्र है । अतः मालवा की बोली का उल्लेख करते हुए सहसा यह मान लेना कि मालवी समस्त मालवा के पठार पर बोली जाती है, अनुपयुक्त होगा ।

मालवी का क्षेत्र

मालवी दक्षिण में नर्मदा नदी के और मध्य में निमाड़, भोपाल, नरसिंहगढ़, राजगढ़, दक्षिण झालावाड़, मन्दसौर (दशपुर), नीमच, रतलाम,

1. डॉक्टर सरकार की यह मान्यता मालव-सीमा-सम्बन्धी प्रचलित पंक्तियों—

'इत चम्बल, उत बेतवा, मालव-सीम सुजान ।
दक्षिण दिसि है नर्मदा, यह पूरी पहचान ॥'

से ठीक-ठीक अनुरूप प्रतीत होती है ।

2. डॉ॰ रघुबीरसिंह द्वारा लिखित, 'मालवा में युगान्तर' नामक ग्रन्थ से उद्धृत ।

पूर्व झाबुआ आदि क्षेत्रों को अपने में मिलाती हुई उज्जैन, देवास और इन्दौर जिलों के आस-पास बोली जाती है। यद्यपि मालवी का अधिकांश क्षेत्र मध्यभारत प्रान्त के अन्तर्गत आता है तथापि राजनीतिक सीमाओं के बाहर राजस्थान के कुछ भाग में भी उसका प्रभुत्व है। मध्य प्रदेश के चाँदा और बैतूल जिलों में कुछ जातियों द्वारा भी मालवी बोली जाती है, जिसका उल्लेख उपभेदों के अन्तर्गत किया गया है। विशेष रूप से कोटा के दक्षिण-प्रदेश में मालवी बोलने वालों की बस्ती है, जिनकी बोली को रांगड़ी कहते हैं।[1]

वर्तमान मालवी वैसे मध्य भारत के उज्जैन, इन्दौर, देवास, मन्दसौर और राजगढ़ जिलों में मुख्यतः प्रचलित है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ४० लाख कूती जाती है। शासकीय व्यवहार की भाषा यद्यपि हिन्दी ही है, पर गाँवों में व्यापार-उद्योग में तथा कस्बों के घरों में मालवी का ही व्यवहार सामान्यतः होता है। प्रकृति और स्वभाव के नाते मालवी सरल, धर्मभीरु, सौन्दर्यप्रिय, स्वस्थ और भोले लोगों की बोली है। ह्वेन त्सांग (७वीं शताब्दी) ने अपने भ्रमण-वृत्तान्त में यही बात दूसरे शब्दों में बताई है। उसने मालवा की उर्वरा मिट्टी, फसल और लोगों के स्वभाव का उल्लेख करते हुए लिखा है: "इनकी भाषा मनोहर और सुस्पष्ट है।"[2]

ग्रियर्सन का भ्रमात्मक वर्गीकरण

मालवी शौरसेनी प्राकृत की शाखा से होती हुई अवन्ती-अपभ्रंश से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है। यद्यपि अवन्ती प्रदेश के अन्तर्गत की भाषाओं में राजस्थानी भी शौरसेनी से सम्बन्धित है तथापि

---

१. देखिए श्री रामप्रसाद द्विवेदी 'समीर' एम० ए० का लेख 'हिन्दुस्तानी' जनवरी १९५१।

२. देखिए 'ह्वेनत्सांग का भारत-भ्रमण'। अनु०—ठाकुरप्रसाद शर्मा 'मुरेश'।

यह धारणा निराधार है कि मालवी राजस्थानी उपशाखा की एक बोली है। विवाद या मतभेद का मुख्य कारण जार्ज ग्रियर्सन द्वारा निर्धारित भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण है। ग्रियर्सन के पूर्व भारतीय भाषाओं एवं उपभाषाओं का किसी ने समग्र रूप से वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया था। ग्रियर्सन ने सन् १६०७–८ में 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया' की वृहद् जिल्दों में राजस्थानी और उसके उपभेदों पर प्रकाश डालते हुए मालवी के सम्बन्ध में विचार किया है। उन्होंने सुविधा के लिए राजस्थानी को पाँच मोटे वर्गों में विभक्त किया। चौथा वर्ग 'दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी' या मालवी का है, जिसके मुख्य भेद राँगड़ी और सोंधवाड़ी बताए हैं। प्रसिद्ध भाषाचार्य डॉ॰ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने यह उचित समझा कि राजस्थानी भाषाओं को दो पृथक् शाखाओं[1] में विभक्त कर दिया जाय—१. पूर्वी शाखा (पछाँही हिन्दी) और २. पश्चिमी शाखा। 'कुछ स्थूल विशिष्टताओं' के कारण जिन भाषाओं को 'एक ही सूत्र में गूँथ दिया' गया है वह ठीक नहीं है। टेसीटरी के विचारों के आधार पर वह यह स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि 'सूक्ष्मतर वैयाकरण दृष्टि के कारण राजस्थान-मालवा की बोलियों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित करना बेहतर होगा।' साथ ही वह यह भय भी मानते हैं कि मेवाती, निमाड़ी और अहीरवाटी के साथ मालवी पछाँही हिन्दी से 'ज्यादातर सम्पर्कित है।' ग्रियर्सन ने निमाड़ी को दक्षिणी राजस्थानी माना है, किन्तु मालवी से उसका निकटतम सम्बन्ध है। इस प्रसंग में मालवी और निमाड़ी के विषय में थोड़ा विचार करना आवश्यक है।

मालवी और निमाड़ी

निमाड़ी उज्जयिनी के दक्षिण में नर्मदा नदी के ऊपर भूतपूर्व इन्दौर राज्य के एक भाग में बोली जाती है। भौगोलिक दृष्टि से यह भाग मालवा से अनेक बातों में भिन्न है। समुद्र-तल से मालवा जहाँ आनुपातिक तौर पर

[1] सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, 'राजस्थानी भाषा', पृष्ठ ६–१०।

जो हो, निमाड़ी और मालवी के प्रमुख भेदों को ध्यान में रखते हुए हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि दोनों के लोक-साहित्य में एक ऐसी समानता है, जो मालवी और राजस्थानी में नहीं देखी जाती। राजस्थानी की अपेक्षा निमाड़ी मालवी के अधिक निकट है। यह स्पष्ट करने के लिए दोनों के कुछ लोक-गीत नीचे दिये जा रहे हैं :

"वीरा"

निमाड़ी : चंदन का थाँगणा म[1] पिपळई[2] रे हंसा[3], पूनर आवजे
आज वो सब सद[4] आवजे रे हंसा

---

1. में, २. पीपल वृक्ष, ३. वीरा, भाई, ४. लिए।

नी तो रहिजे अपणा देस
माड़ी जाया[1] चूनर लावजे[2]

मालवी : गुया माय की पीपल रे बीरा
जाँ चढ़ जोऊँ[3] तमारी बाट[4]
माडी रा जाया चूनर लाजो
चूनर लाजो तो सब सरू लाजो
नी तो रीजो तमारा देस[5]

"भात"

निमाड़ी : झीणी-झीणी रे ईरा उड़े छः खे बादल दीसे धूँधला जे
बलदारी[6] रे ईरा बाजी छः टाल[7], गाडा चलैता म्हे सुणथाजे
म्हारा ईराजीरा चमक्या छः सैल[8], भावजारा चमक्या चूड़लाजे
म्हारी बहनड़ली रा चमक्या छः चीर, भतीजारा मैमन[9] मोलियाजे[10]

"मामेरो"

मालवी : गाड़ी तो रड़की रेत में रे बीरा, उड़ रही गगना धूल
चालो म्हारा धोहरी[11] उतावला रे म्हारी बेन्या बई जोवे बाट
धोहरी का चमक्या सींगड़ा, म्हारा भतीजा को झगल्यो झाग
भावज बई को चमक्यो चूड़लो म्हारा बीराजी री पचरंगी पाग[12]

---

1. माँ का जाया, २. 'निमाड़ी-लोकगीत' : रामनारायण उपाध्याय : स्नेह-गीत-प्रकरण। ३. देखूँ, ४. मार्ग, ५. 'मालवी लोक-गीत'; श्याम परमार : पृष्ठ ८२। ६. बैल, ७. घंटी, ८. भाले, ९. पगड़ी। १० 'विशाल भारत', फरवरी, १९२१। ११. बैल। १२. 'मालवी लोक गीत', पृष्ठ ८३।

निमाड़ी में वैसे बुन्देलखण्डी की कुछ प्रवृत्तियाँ आ मिली हैं। कुछ प्रवृत्तियाँ भीली और मराठी की भी हैं। इन सभी प्रवृत्तियों की चर्चा यहाँ न करते हुए संक्षेप में निमाड़ी के कुछ मुख्य लक्षणों पर प्रकाश डालना उचित होगा।

निमाड़ी के मुख्य लक्षण

(१) 'ख' का बाहुल्य, जो कर्मकारक 'के' अथवा 'को' प्रत्ययों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—उनख (उनको), तमख (तुमको), म्हख (मुझको), वणख (उनके) आदि। यह बुन्देलखण्डी 'खे' का विकारी रूप है।

(२) क्रिया पदों में 'ज' अथवा 'वे' या 'च' प्रत्ययों का चलन। जैसे—लावजे (लाना), जायगज (जायगा), आवेज (आयगा) इत्यादि। वर्तमान क्रिया 'है' के लिए गुजराती की 'छे' क्रिया का प्रयोग निमाड़ी में होता है।

(३) अधिकरण की विभक्ति 'में' के स्थान पर 'म' का सामान्य प्रयोग। जैसे—उज्जैन म (उज्जैन में), घर म (घर में) आदि।

(४) 'ना' प्रत्यय लगाकर बहु वचन बनाने की प्रवृत्ति निमाड़ी में है, जो 'होण' या 'हुण' प्रत्यय के रूप में भी व्यक्त होती है। 'ना' बहुधा जातियों की बोली में अधिक प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ :

	एक वचन	बहु वचन
'ना' प्रत्यय :	आदमी	आदमीना
	बैरा (स्त्री)	बैराना
	छोरा (लड़का)	छोराना
'होण' प्रत्यय :	आदमी	आदमी होण (हुण)
	बैरा	बैरा होण (,,)
	छोरा	छोरा होण (,,)

मालवी में 'होण' या 'हुण' प्रत्यय का 'ण' 'न' में परिवर्तित हो जाता

। अस्तु; सुनीति बाबू की दो शाखाओं वाली प्रतीति विश्वसनीय मानते
र मालवी और निमाड़ी को एक ही शाखा की बोलियाँ स्वीकार करते
ए हम नीचे राजस्थानी और मालवी के गद्य और पद्य के उदाहरण प्रस्तुत
रते हैं :

: अ : राजस्थानी (गद्य)

कोई माणस गा दो बेटा हा । वा माय सूँ लहोड़ो कियो बाप ने
ो क थो बाबा सर ने धण माल मैंगा म्हारे वट आवे जको मने दे
। जकाम बाप घरगा धण माल गा बाँटा कर दो । वाँ में बाट दयो ।
ड़ा-सा दन पाछे लहोडकियो बेटो आपगो सो धण भेलो करगे अलग
लक में गयो और बठे कुमारग में सा कई खोय दियो ।

मालवी (गद्य)

कोई आदमी के दो छोरा था । उनमें से छोटा छोरा ने जई के
प के कियो के दादाजी म्हारे धन को हिस्सो दई दो और ओने उनमें
ल-ताल को बाँटो करी दियो । थोड़ाई दन में छोटो छोरो सब अपनो
ाल-मतो लई ने कोई दूसरा देस परो गयो और वाँ आपनो धेन मोज
अपनो धन बहई दयो ।[1]

: ब : राजस्थानी दूहा

जिण दिन ढोलउ चालियउ, तिण अणगूणी रात ।
मारू सुहिणउ अदि कयउ, मनियौं गूँ परभात ॥
सुरनइ प्रीतम सुझ मिलवा, हूँ भागो नहि होइ ।
दाउन पमक न लोअर्दा, मनिहि विछोहड होइ ॥
सुरनइ प्रीतम सुझ मिलवा, हूँ नहि भागी पाई ।
दाउन पमक न छोड़दी, मनि सुरनइ हुइ जाई ॥[2]

(ढोला मारू रा दूहा)

---

[1] देवास, म० भा० ।

[2] 'ढोला मारू रा दूहा' : काशी ना० प्र० सभा, सं० १९९१ ।
दूहा १६६ ।

मालवी दोहा

चंदा म्हारी चाँदनी, सूतो पलंग बिछाय।
जद जागी जद एकली, मरूँ कटारी खाय॥
छै छल्ला छै मूंदड़ी, छल्ला भरी परात।
एक छल्ला का वास्ते, छोड़या मायन बाप॥
टीकी दें मेंजा घड़ां, बिच काजल की रेख।
साजन को सारो नहीं, लिख्या विधाता लेख॥[1]

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थानी और मालवी में वह नैकट्य नहीं है जो मालवी और निमाड़ी में है।

अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषाएँ

बोलियों के इतिहास का अध्ययन प्रमाणों के अभाव में कठिन विषय ही सिद्ध होता है। यह स्पष्ट है कि प्राचीन जनपदों की अपनी-अपनी भाषाएँ कालावधि में 'प्राकृत' अथवा 'अपभ्रंश' और देश नाम से प्रसिद्ध हुई।[2] किन्तु उन प्राकृतों एवं अपभ्रंशों का प्रमाणों के अभाव में रूप निर्धारित करना कठिन विषय हो गया है। केवल शौरसेनी अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है जिससे हम वर्तमान कई बोलियों की उत्पत्ति का अनुमान करते हैं। किन्तु साहित्य की भाषा और साधारण जन की भाषा का अन्तर ध्यान में रखते हुए हमें यह स्वीकार करना होगा कि जो साहित्य उपलब्ध है वह बोली जाने वाली भाषाओं से किंचित् सुसंस्कृत वर्ग की भाषाओं का ही है। इस दृष्टि से प्राकृत की स्थिरावस्था के परिणाम स्वरूप अपभ्रंश का विकास हुआ और अपभ्रंश की वैयाकरणिक नियम-बद्धतारूप आधुनिक प्रान्तीय

1. 'मालवी लोक-गीत', पृष्ठ ६१-६२।
2. "तानपि वैयाकरणा निबद्धानपभ्रंश भाषा नियमानुबद्धरूप प्रकृति-प्रवर्त्तमानो विविध जनपद भाषाव्यवहारः सामान्य संज्ञया 'प्राकृत' 'अपभ्रंश' इत्युच्यमानोऽपि विशिष्टतया तत्तद्देशभाषानाम्ना प्रसिद्धिमगात्।"—ना० प्रो० सी०, सं० ३७, पृष्ठ ७३।

उपस्थित करने मे सहायक हुआ है। रुद्रट के समय की मालवी अपभ्रंश तो है ही, किन्तु अवन्ती अपभ्रंश और उसमे भेद न समझा जाना चाहिए। अपभ्रंश भाषा की कविताओं मे असंख्य मालवी शब्द[1] अवन्ती अपभ्रंश से उसका नाता जोड़ने मे पीछे नहीं है। इससे यह भी प्रकट होता है कि प्राचीन मालवी का कभी अपना साहित्य रहा होगा। नाटकों मे प्रत्यक्ष रूप से आवन्तिका का प्रयोग उसके प्रभाव को सिद्ध करता है। ब्राह्मण-ग्रन्थो मे यद्यपि मालवों की मालवी का उल्लेख नहीं है, पर यह निश्चित है कि

1. देखिए—'हिन्दी-काव्य-धारा' : राहुल सांकृत्यायन, १९४५। कुछ मालवी शब्दों के प्रयोग नीचे दिये जा रहे हैं —
   (स्वयंभू ई० ७९०) 'सक्कर खंडेहि पायस पाय सोही।
   लड्डुय-छावण-गुल इक्खु-रसेहि।' (पृष्ठ ४८)
   'उड्डंती पडिउ वड्डेहि हं, पावइं हसिमहा
   पोट्टलउ' (पृष्ठ ६४)।
   भुसुकुपा (८०० ई०) 'राग-नावडी पॅंड चरेंड चहिउ'—
   (पृष्ठ १३१)।
   गोरखनाथ (८४५ ई०) 'सहजि संतोषी भरि-भरि' रोवे'-(पृष्ठ १४८)
   'झीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा' (पृष्ठ १४८)
   'सासुडा पाछनइ कहुरो हिडोळे' (पृष्ठ १५१)
   'सोने रूपै सीझै काज' (पृष्ठ १५३)।
   टेंटण (तंति) पा (८४५ ई०) 'बलद बिआएल गविआ बाँझे।
   (दस-अवस्थानगर) पिटहू दुहिअइ एतिना साँझे॥' (पृष्ठ १६४)
   जिनदत्त सूरि (११८० ई०) 'जो करइत्थ अा नरवइ राती'
   (पृष्ठ ३२४)।
   'केहा देही दरिसाविउजहि' (पृष्ठ ३२५)।
   —इत्यादि

उपस्थित करने में सहायक हुआ है । रुद्रट के समय की मालवी अपभ्रंश तो है ही, किन्तु अवन्ती अपभ्रंश और उसमें भेद न समझा जाना चाहिए । अपभ्रंश भाषा की कविताओं में अनेक मालवी शब्द[1] अवन्ती अपभ्रंश से उसका नाता जोड़ने में पीछे नहीं हैं । इससे यह भी प्रकट होता है कि प्राचीन मालवी का कभी अपना साहित्य रहा होगा । नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से अवन्तिजा का प्रयोग उसके प्रभाव को सिद्ध करता है । काव्य-ग्रन्थों में यद्यपि मालवी की मालवी का उल्लेख नहीं है, पर यह निश्चित है कि

---

1. देखिए—'हिन्दी-काव्य-धारा' : राहुल सांकृत्यायन, १९४५ । कुछ मालवी शब्दों के प्रयोग नीचे दिये जा रहे हैं —

(स्वयंभू ई० ७९०) 'सक्कर खंडेहि पायस पाय सोही ।
लड्डुव-लावण-गुळ इक्खु-रसेहि ।' (पृष्ठ ४८)
'उच्छंगी पढिउ वड्डेहि हैं, धावई हसिहां पोट्टलउ' (पृष्ठ ६४) ।

सुमुकुपा (८०० ई०) 'राम-नावडी पँठ थसँड बहिउ'— (पृष्ठ १३६) ।

गोरखनाथ (८४५ ई०) 'सहजि यंगीठी भरि-भरि' राँधे'-(पृष्ठ १४८)
'जीत्या संग्राम पुरिप भया सूरा' (पृष्ठ १४८)
'सासुड़ी पालनड़े बहुको हिंडोजे' (पृष्ठ १६१)
'सोने रूपै सीझै काज' (पृष्ठ १६३) ।

टेंढण (तंति) पा (८४५ ई०) 'बलद बिआयल गविआ बाँझे ।
(देश-अवन्तीनगर) पिटहु दुहिअई एतिनो साँझे ॥' (पृष्ठ १६४)

जिनदत्त सूरि (११८० ई०) 'जो स्वपात्य जा नच्चइ दारी' (पृष्ठ ३४४) ।
'बेटा बेटी परिणाविज्जहिं' (पृष्ठ ३४४) ।
—इत्यादि

आर्यों की बोली उत्तर मालवा से दक्षिण मालवा तक उस समय के लगभग प्रचलित हो गई थी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो विदित होगा कि गुप्त-साम्राज्य के पश्चात् लोक-भाषाओं ने बल पकड़ा और १४-१५ वीं शताब्दी तक आते-आते अधिकांश रूप से इन भाषाओं का रूप निर्धारित हो गया।

डॉ० चाटुर्ज्या का मत

डॉक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने मालवी के सम्बन्ध में लिखा है : "मालवे की बोली के सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है कि दरअसल यह मध्यदेश की भाषा ही की एक शाखा है, पर इस पर इसकी पश्चिम की पड़ोसी मारवाड़ी-राजस्थानी का काफी प्रभाव पड़ा, जिसके कारण इसमें मध्यदेश की भाषा से खासणीय कुछ स्थानीयपन आ गया है।" अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिए डॉ० चाटुर्ज्या दो भिन्न आर्य-संस्कृतियों की शाखाओं के ऐतिहासिक सत्य को भाषा-विज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्तों सहित प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इससे विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता, किन्तु मालवी की स्वतन्त्र धारा का सिद्धान्त-सूत्र अवश्य पुष्ट हो जाता है। ६वीं शताब्दी के लगभग मालवी के स्वतन्त्र होने के प्रमाण उपलब्ध हैं। मालवी उस समय लोक-व्यवहार की भाषा होकर भी शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हो रही थी। 'कुवलयमाला' (८वीं शताब्दी) की एक गाथा में मालवी के प्रयुक्त होने की बात बताई गई है :

"तणु-साम-मडहदेहे कोवणए माण-जीविणो रोहे।
भाउअ भइणी तुम्हें' भणिरे अह मालवे दिट्ठे ॥"[1]

मालवी का अन्य भाषाओं पर प्रभाव

मालवी कोमल और कर्ण-प्रिय बोली है। इसमें कई भिन्न भाषाओं

---

1. "तनु-श्याम लघुदेहान् कोपनान् मान जीविनो रौद्रान्।
'भाउअ भइणी तुम्हें' भणतोऽथ मालवीयान् दृष्टवान् ॥"
—'कुवलयमाला कथायाम्' (जे० भा० ता० १२१-२) गा० ओ० सी० संख्या ३७, पृष्ठ ६३।

के शब्द स्वाभाविक रूप से इस [illegible] हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आगमन [illegible] परिवर्तनों का महत्त्वपूर्ण स्थल होने [illegible] कारण कई संस्कृतियों और [illegible] से यहाँ के निवासियों का सम्पर्क रहा [illegible] किन्तु मालव-दल के मन्त्र-[illegible] से मालवी का प्रभुत्व भी समय-समय [illegible] अन्य भाषाओं पर हावी [illegible]। मालवी की भाषा होने के कारण यह [illegible] गति की [illegible] रही है और उसमें शब्दों के आदान-प्रदान का [illegible] से बना रहा। यह बात इतिहास-सम्मत है कि मालवों ने पहाड़ी प्रान्तों में प्रवेश करके अपनी बस्तियाँ बसाईं। अतः अपनी भाषा को वे दूर-दूर तक लेते गए। आज भी पहाड़ी बोलियों और मध्य एशिया के घुमन्तुओं की बोलियों में जो मालवी शब्द मिलते हैं अथवा जयपुर के निकटवर्ती प्रदेश या मोटे रूप में राजस्थानी प्रदेश की कुछ बोलियों से उनका जो नैकट्य प्रतीत होता है, उसके मूल में यही कारण है। सैकड़ों मालवी शब्द पंजाबी, मराठी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, मैथिली और गढ़वाली में भी मिलते हैं। भोजपुर परगने में नयका और पुरनका नामक दो गाँव उज्जैन और धार के परमार-वंशीय राजपूतों द्वारा ११वीं और १४वीं शताब्दी के बीच मालवा से जाकर अधिकृत किये गए थे। डॉ॰ बुकनिन ने सन् १६२६ में पटना से प्रकाशित 'जरनल' में इस बात का उल्लेख किया है। मालवी शब्दों का भोजपुरी में पाये जाने का एक यह भी कारण हो सकता है कि इस ओर से जाकर वे लोग वहाँ बस गए थे। नेपाल के मल्ल राजाओं का प्रभुत्व मध्य-काल में रहा, जिन्होंने नाट्य-साहित्य को प्रोत्साहन दिया और गीति-नाट्य की परम्परा स्थापित की, जो नेपाल में सन् १७६८ तक मल्ल राजाओं के परास्त होने तक बनी रही। किन्तु मालवा में यह परम्परा आज भी जीवित है। गढ़वाली के लोक-गीतों में मालवी के अधिकांश शब्द भरे पड़े हैं और उनकी प्रथाएँ भी प्रायः मालवा से काफी साम्य रखती हैं। पवाड़े, मंगल-गीत, विवाह-गीत, देवी-देवताओं के गीत तथा परम्परा से प्राप्त लोक-साहित्य में मालवी शब्दों के रूप मिलना

मालवी के घुमन्तु-प्रभाव को व्यक्त करने में काफी सहायक होते हैं। नीचे कुछ ऐसे गढ़वाली गीत[1] दिये जा रहे हैं, जिनमें इटैलिक टाइप में छपे शब्द मालवी के हैं :

"*पूरी* देंदा *पौणे* कपठी रहांद दीठ
हमना नी जाणी, *रूड़िया को जायो*
मिठै देन्द *पौणो* मिठाई रहांद दीठ
हमना नी जाणो, *हलवाई* को जायो

कालाडाडा बीच बाबाजी, कालीच कुएड़ी
बाबाजी, *एकुली* मैं लगदी डर[2]

हे ऊँची डाँडियो, *नीसी होवा*,
घणी कुलाई *छाँटी* होवा।
मैं कुलाई छ खुद मैतुड़ा की,
देश बाबाजी को देखणा देवा॥[3]

एक मालवीपन से पूरित सम्पूर्ण 'मांगल'-(मंगल) गीत देखिए :

दे देवा बाबाजी, कन्या को दान
दानूँ माँ को दान हो लो कन्या को दान
हीरादान, मोतीदान सब कोई देला
तुम देवा बाबाजी, कन्या को दान

---

१. 'जनपद' (अंक २) 'गढ़वाली लोक-गीत', पृष्ठ ४५, ४६, ४७।

२. पूरी (मा०), पौणो (मा० पावणो), हमना नी जाणा, रूड़िया को जायो (मा० हमनी जाणा रूड़ी जायो), हलवाई (मा० हलवई)। कालाडाडा बीच (मा०कालाडाडा बिच), बाबाजी (मा०बाबाजी), एकुली (मा० एकली)।

३. नीसी होवा (मा० नीची हुवे), घणी (मा०), छाँटी (मा०), देस बाबाजी को देखणा देवा (मा० बाबाजी को देस देखण देवो)।

जिमिदान, भूमिदान, सब कोई देला
को भागी देला, कन्या को दान

मालवी के उपभेद

मालवी के कुछ अपने उपभेद हैं, जिनका वर्गीकरण सुविधा के लिए करना अनिवार्य है। ऐसे भेद प्रमुख स्थानों और जातियों से जाने जाते हैं। जैसे—रतलाम क्षेत्र की 'रतलामी', उमठवाड़ (राजगढ़-नरसिंहपुर-खिलचीपुर क्षेत्र) की 'उमठवाड़ी', मन्दसौर (दशपुर) की मन्दसौरी, सोंधवाड़[1] की सोंधवाड़ी, मेवातियों की मेवाती, भोयरों की भोयरी, पटवों की पटवी,

1. सोंधियों की बसावट के कारण ही सोंधवाड़ नाम पड़ा है। यह भाग उज्जैन जिले के उत्तर पूर्व में आगर नामक स्थान के उस ओर है। इसी जाति से सोंद्वाड़ी मालवी एक भेद चला है। स्थान-सूचक होने के कारण प्रस्तुत पुस्तक में यह भेद जाति-सूचक उपभेदों में नहीं रखा गया है। 'सोंधियों' को 'सोंदिया' भी कहा जाता है। सन् '३३ की जन-गणना के अनुसार इनकी संख्या दो लाख के लगभग मानी गई है। सर जॉन मालकम के समय यह जाति अत्यन्त ही लुटेरी और खूँखार थी ('No race can be more despised and dreadful than the sondhias')। किन्तु अब यह खूँखार होकर भी लुटेरी कम है। 'सोंधिया' को कुछ विद्वान् 'सन्ध्या' का अपभ्रंश मानते हैं, जिसका अर्थ हुआ 'मिश्रित'। अपने विचित्र उच्चारण में ये लोग अपने को 'होंदिया' कहते हैं और अपनी उत्पत्ति की एक यह अद्भुत कथा कहते हैं—किसी राजकुमार का मुँह जन्म से ही शेर का-सा था। उसके माँ-बाप ने उसे जंगल में निकाल दिया और वहीं रहकर वह भिन्न-भिन्न जातियों की स्त्रियों से विवाह करके 'सोंदियों' का आदि पुरुष हुआ।—(देखिए श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' एम० ए० का लेख, 'हिन्दुस्तानी', जनवरी १९३३)।

राजपूतों की 'रागड़ी', आदि। भेदों की पहचान उच्चारण, विभक्ति, प्रत्यय, कारक-चिह्न, सर्वनाम, क्रियापद, विशेषण आदि के प्रयोग से हो जाती है। केवल सर्वनाम 'मैं' के लिए 'हूँ', 'म्हूँ', 'म्हू', 'म्हं' अथवा 'तू' के लिए 'थें', 'तूँ', 'तन' आदि रूप मिलते हैं। इसी प्रकार 'उनके' के लिए 'वनखे', 'विनखे', 'वणीके' 'वणके', आदि या 'तुमको' के लिए 'तमखे', 'तमख', 'तमारके', 'तमारखे', 'तहाके' आदि अथवा क्रियापद 'कहा' के लिए 'कियो', 'कयो' आदि रूप सरलता से मिल जाते हैं। स्थानाभाव के कारण इस सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक यहाँ चर्चा नहीं की जा सकती।

मालवी के कुछ भेदों की प्रवृत्तियाँ

सोंधवाड़ी

१. स-कार (श-कार भी) के स्थान पर ह-कार का प्रयोग। जैसे—हमज्यो (समझा), होडिया (सोडिया), हाथी (साथी), हक्कर (शक्कर), हाँझ (साँझ), हुपनो (सपना), हुणो (सुना) आदि। यह प्रवृत्ति राजस्थानी से प्रभावित गुजराती के कुछ उपभेदों में भी है। इसके अतिरिक्त सिन्धी और लहन्दी तथा पुरानी मराठी में भी यह मिलती है। डॉ० चाटुर्ज्या इसे किसी बाहरी भाषा के प्रभाव से कुछ विशेष शब्दों या प्रत्ययों मे आया समझते हैं।

कभी-कभी ह-कार का लोप भी हो जाता है। पर यह बहुत कम होता है। जैसे 'हया' का 'यो', 'ल्होरो' का 'लोरो' आदि।

२. सोंधवाड़ी में 'ल' का उच्चारण मराठी के 'ळ' के अनुरूप होता है।

३. मालवी के इस उपभेद में 'व' या 'व' में परिणत होना सहज है। जैसे—'वात' (बात), वाट (बाट) आदि।

४. मराठी, सिन्धी तथा लहन्दी आदि में प्रयुक्त 'ण' मूर्धन्य ध्वनि सोंदवाड़ी में लक्षणीय है। जैसे—समझणो (समझना), रोवणो (रोना), कणी

तो हमें मध्यवर्ती मालवी से ही आरम्भ करना पड़ता है। मध्यवर्ती मालवी से तात्पर्य मालवा के केन्द्र में बोली जाने वाली मालवी है। ऐतिहासिक प्रमाणों में अधिक न उलझते हुए टकसाली या मध्यवर्ती मालवी का क्षेत्र उज्जैन जिला ही घोषित किया जाता है। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब अंग्रेज ईसाइयों ने धर्म-प्रचारार्थ भारतीय भाषाओं और बोलियों में 'बा(बिल' के अनुवाद तैयार किये तब कलकत्ता के समीपवर्ती श्रीरामपुर केन्द्र के ईसाई विद्वान् केरी, वार्ड और मार्शमन ने उज्जैन की समीपवर्ती मालवी को ही उपयुक्त समझा। उन्होंने उसे मालवी न कहकर 'उज्जैनी' कहा, और स्थान विशेष के नाम से ही अपनाया। अतः 'उज्जैनी' को ही मध्यवर्ती मालवी मानना उचित होगा।[1]

''बारह कोस पर बोली बदले' कहावत की सत्यता को हम मालवी पर घटित करके अच्छी तरह परख सकते हैं। सुविधानुसार मालवी के स्थान-सूचक एवं जाति-सूचक उपभेद नीचे दिये जा रहे हैं—

१ स्थान-सूचक उपभेद

'उज्जैनी' (आदर्श मालवी)

- उत्तरी मालवी
  - सोंधवाड़ी (उत्तर-पूर्व), मंदसौरी, डँगेसरी (ढँढेरी, कुरदली), रतलाम (उत्तर-पश्चिम)
- दक्षिणी मालवी
  - निमाड़ी
- पूर्वी मालवी
  - उमठवाड़ी
- पश्चिमी मालवी
  - बाँगड़ी
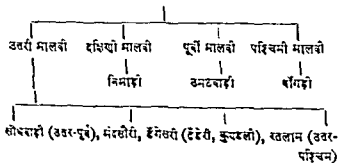
१. टकसाली मालवी के उदाहरण परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं।

नाम	क्षेत्र	प्रभाव
'उज्जैनी'	जिला उज्जैन	आदर्श मालवी
उत्तरी मालवी	रतलाम, जावरा, मन्दसौर कोटा के समीप डाँग प्रदेश एवं कोटा रियासत (भू० पू०)।	राजस्थानी, मारवाड़ी
दक्षिणी मालवी	नर्मदा नदी का मध्य उत्तर-प्रदेश।	निमाड़ी, मराठी
पूर्वी मालवी	नरसिंहगढ़, सीहोर, दक्षिण झालावाड़ और भोपाल का पश्चिमी क्षेत्र।	बुन्देलखण्डी
पश्चिमी मालवी	जोबट, अलिराजपुर झाबुआ।	गुजराती, भीली

२ जाति-सूचक उपभेद

उपभेद	जाति	स्थान	बोलने वालों की संख्या	प्रभाव	विवरण
१. रांगड़ी (रजवाड़ी)	मालवी राजपूत	मालवा में जहाँ-जहाँ रहते हैं	लगभग दो लाख	राजस्थानी मारवाड़ी	राजस्थान से आकर बसने वाले राजपूतों की बोली, जिन्होंने मालवी को अपनाया, पर राजस्थानी उच्चारण वैसे ही रहने दिए।
२. नागरी	नागर, औदीच्य और गुजराती माली	,,	पचास हजार के लगभग	गुजराती	ये जातियाँ गुजरात की ओर से कई शताब्दियों पूर्व आकर बसीं।
३. गूजरी	गूजर	,,	एक लाख के लगभग	,,	गूजरों के कई गाँव मालवा में हैं। इनकी बोली और नागरी में थोड़ा अन्तर है।

८. मालवई	पंजाब के मालव	मालवा (पंजाब)	—	पंजाबी प्रभाव	वैसे मालवई पंजाबी का एक उपभेद माना गया है, पर उसका मालवी से निकट सम्बन्ध है। कदाचित् पंजाबी प्रभाववश उसे पंजाबी का उपभेद माना गया है।

अपभ्रंश के क्षेत्र में मालवा और उसके निकटवर्ती प्रदेश सम्मिलित थे। इसमें कतिपय भेदों के साथ कुछ ऐसी उपभाषाएँ वर्तमान थीं, जिनका सम्बन्ध अवन्तिका की भाषा से था। इन सभी भाषाओं पर आभीरों का बहुत प्रभाव पड़ा। अध्येताओं का कथन है कि तत्कालीन अपभ्रंश के निकट आधुनिक मालवी, राजस्थानी और गुजराती हैं। एक भाषा (अपभ्रंश) का प्रभुत्व होने से प्रादेशिक भेदों को उठने का अवसर नहीं मिला। फिर अपभ्रंश थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सभी को समझ में आ जाती थी। अतएव १२ वीं शताब्दी तक उसमें स्वतन्त्र साहित्य रचना होने की सम्भावना कम ही प्रतीत होती है। यदि कुछ रचनाएँ हुई भी हों तो वे कालान्तर में नष्ट हो गई होंगी।

विलीन हुई रियासतों के कागजों में भी बहुत-कुछ उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकती है। महाराजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिंह ने लिखा है : "१८वीं सदी एवं उससे बाद तक किस प्रकार ब्रजभाषा (पिंगल) और बहुत-कुछ डिंगल (राजस्थानी) ही काव्य-भाषाएँ रहीं एवं मालवा में साहित्यिक गद्य का अभाव ही था। पत्रों एवं बोल-चाल आदि की भाषा भी स्थान एवं समाज के अनुसार बदलती थी। तत्कालीन जो भी पत्र प्राप्य हैं एवं जो भी दान-पत्र आदि सनदें मिलती हैं उनमें अवश्य मालवी का यत्र-तत्र स्वरूप देखने को मिलता है। अंग्रेज़ों के आधिपत्य के साथ ही जब जन-साधारण को कुछ शान्ति एवं सुरक्षा प्राप्त हुई तब वे पुनः मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद की ओर ध्यान देने लगे और यों लोक-रंजन के लिए माच आदि का प्रारम्भ हुआ। मालवा के स्थानीय सन्तों की रचनाओं में मालवी का पुट होना सर्वथा स्वाभाविक है।"[1]

व्यक्तिगत रूप से कुछ महानुभावों ने ऐसी सामग्री एकत्र करने का प्रयत्न किया है जिससे मध्यकालीन एवं पूर्वाधुनिक मालवी साहित्य पर प्रकाश पड़ता है। उपलब्ध एवं सम्भावित सामग्री के आधार पर मालवी साहित्य १. लिखित और २. अलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

लिखित के अन्तर्गत १. वह साहित्य, जिसकी खोज होनी शेष है, २. वह साहित्य जो खोजा जा चुका है, और ३. वह जो मुद्रित है। अलिखित के अन्तर्गत मौखिक साहित्य ही होगा, जिसे हम लोक-साहित्य की संज्ञा से अभिहित करेंगे।

वर्तमान मालवी के दो स्वरूप हैं—ग्रामीण मालवी और शहरी मालवी। दोनों स्वरूपों में कोई अधिक भेद नहीं है। उच्चारण की भिन्नता एवं परिष्कृत शब्दों के परिष्कार से यह अन्तर सहज ही मालूम हो जाता है।

---

1. लेखक को लिखे गए एक व्यक्तिगत पत्र से उद्धृत। (१० मई १९६१)।

विकास-क्रम की दृष्टि से मालवी का इतिहास किञ्चित् संदिग्ध है। किसी भी आत्म-जीवी जाति के साहित्य एवं उसकी भाषा के प्रति यह सन्देह स्वाभाविक है। अतएव उक्त विवेचन के आधार पर मालवी के विकास की छः अवस्थाएँ हम निर्धारित कर सकते हैं —

:अ: *प्राचीन मालवी* :	१ अवन्ती प्राकृत	} ११वीं शताब्दी तक
	२ अवन्ती अपभ्रंश	
:आ: *मध्यकालीन मालवी* :	३ पूर्व मध्यकालीन मालवी	} १८वीं शताब्दी के मध्य तक
	४ उत्तर मध्यकालीन मालवी	
:इ: *आधुनिक मालवी* :	५ पूर्वाधुनिक मालवी	: १९वीं शताब्दी के मध्य तक
	६ उत्तराधुनिक मालवी	: २०वीं शताब्दी

लिए जिन गुणों का होना आवश्यक है वे सभी माच में निहित हैं। लोक-गीतों की हृदय-स्पर्शी शब्द-योजना, गीति-तत्त्व और नाट्य का लोक-रंजनकारी स्वरूप तीनों का समावेश इन माचों में है। मैथिल के 'कीर्तनियाँ' नाटक की तरह माचों में भी संगीत की प्रधानता है। संगीत की विशेष टेकनिक को व्यक्त करने के लिए माच में छोटी रंगत, रंगत इकहरी, रंगत दोहरी, रंगत झेला की, रंगत सिंदूरी, रंगत बड़ी या रंगत दादरा की आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार सवाद के लिए 'बोल' और उत्तर के लिए 'जुवाब' का प्रयोग माच की अनेक पोथियों में हुआ है।

माच रात्रि के मध्य में आरम्भ होकर सूरज की प्रथम किरण के साथ समाप्त होते हैं। प्रकाश के लिए पहले मशालों अथवा कन्दीलों का प्रयोग किया जाता था, किन्तु आजकल गैसबत्ती या शहर में बिजली का प्रकाश साधारण बात हो गई है। हारमोनियम भी ढोलक का साथ देने लगा है, जिसमें वह कर्णान्तर्भी धम्मन का फूट जाना गौरव का विषय समझा जाता है।

माच के प्रवर्तक

बालमुकुन्द गुरु—प्रचलित माच के आदिप्रवर्तक उज्जैन निवासी श्री बालमुकुन्द गुरु हैं। किंवदन्तियों के अनुसार गुरु बालमुकुन्द उज्जैन के [illegible] में 'ख्याल' (खेल) देखने जाया करते थे। उन दिनों नगर का [illegible] इन्हीं ख्यालों में केन्द्रित हो रहा था। एक दिन [illegible] के कारण उन्हें [illegible] के मध्य के एक कोने पर [illegible] बैठे, पर कुछ [illegible] ने उन्हें अपमानित करके वहाँ से उठा दिया। [illegible] बहुत दुःख लगा। आवेश में आकर उन्होंने [illegible] में [illegible] की, जिसमें [illegible] उन्होंने [illegible] किया था। [illegible] में प्रसन्न होकर [illegible] ने दर्शन दिये। उन्होंने [illegible] का वरदान [illegible]। 'साबत [illegible]' [illegible] और दूसरा में माच रचना आरम्भ किया। इस [illegible] है कि बालमुकुन्द गुरु के पूर्व [illegible]

मौजूद था, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके गुरु की प्रतिभा ने नया स्वरूप प्रकाशित किया। मुसलमानी शासन के पूर्व ऐसे मंचों से सम्बन्धित किसी सत्रबद्ध सामग्री के अभाववश इस विषय में प्रकाश डालना-मात्र अनुमानगम्य है।

१९वीं शताब्दी के द्वितीय-तृतीय चरण हिन्दी के रीतिकालीन पतनो-न्मुखी समय के सूचक हैं। राज-दरबारों की विलासिता भक्ति पर हावी होकर अपने विशुद्ध शृङ्गारी रूप में व्यक्त हो रही थी। लोगों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का उत्स रुका हुआ था। आर्थिक कठिनाइयाँ नहीं थीं, यद्यपि यन्त्रों का प्रभाव आरम्भ हो गया था। लोग खाते-पीते थे। वैचारिक संघर्ष के अभाव में वे खाने-कमाने, मौज करने और जीवन के अन्तिम काल में थोड़ा-बहुत भगवत्-चिन्तन कर लेने में ही जीवन की इति-श्री समझते थे। मालवा प्रारम्भ से ही उपजाऊ रहा है, अतः यहाँ की भूमि से जाग्रति और भी दूर थी। इसी समय मालवी के माध्यम से मालवी जनता के मनोरंजन के लिए बालमुकुन्द गुरु ने माच का प्रवर्तन किया। धर्मक्षेत्र उज्जयिनी में जिन कथाओं और पौराणिक गाथाओं का प्रचलन था उन्हें गुरु ने अपना लिया। भक्ति, वैराग्य, वेदान्त, शृङ्गार और पौरुषेय भावनाओं का लोक ग्राही स्वरूप उनकी रचनाओं में व्यक्त हुआ। प्रारम्भ में जिन पाँच खेलों को उन्होंने लिखा, सबमें उन्होंने 'निर्गुणी' कथी है अर्थात् उनकी पृष्ठभूमि निर्गुणी कथावस्तु से सम्बन्धित है।

रचनाएँ—गुरु बालमुकुन्द ने कुल १६ माचों की रचना की है, जो क्रमशः खेले जाते रहे हैं। स्वयं गुरु जी प्रत्येक माच में मुख्य पात्र का अभिनय करते थे और गोविन्दा ढोलकिया उनका साथ देता था। उनकी सब रचनाओं की मूल प्रतियाँ गुरु जी की वर्तमान चौथी पीढ़ी के पास आज भी सुरक्षित हैं, जिनसे रचनाओं का काल और कतिपय अन्य बातें ज्ञात होती हैं। वर्तमान पीढ़ी, जो उज्जैन ही में गुरु जी के उसी मकान मे (जैसिंहपुरा) रहती है, उनके माचों को प्रतिवर्ष अभिनीत करके लोक-नाट्य की परम्परा को थामे हुए है।

छापेखानों के खुलते ही गुरुजी के माचों की मुद्रित प्रतियाँ बाजार में

आ गई। यह बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के पश्चात् ही सम्भव हुआ। यद्यपि उज्जयिनी में माच के खेलों की प्रतियाँ सम्वत् १६८२ के लगभग छपकर प्रकाशित हुईं, पर इसके पूर्व इन्दौर के किसी छापेखाने में इन्हीं माचों की पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी थीं। उज्जयिनी के दयाशंकर शालिग्राम बुकसेलर ने गुरु बालमुकुन्द के माच अलग-अलग २० × ३० के साइज में पुस्तकाकार छापे हैं। 'राजा हरिश्चन्द्र' (जो पुस्तकाकार सम्वत् १६८२ में प्रथम बार छपा) के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशक ने लिखा है: "अगर हो कि जो खेल पहिले छपे थे उसमें से इन्दौर वाले ने खेल छपाये सो वह खेल बेमतलब है। कहां से कहीं नहीं मिलती, काफिरबन्दी से गलत कहीं टूट है किधर का हाथ, किधर का पाँव, किधर का धड़, किधर का मुँह लगाकर पूरा खेल ऐसा नाम धरके लोगों को धोखा देने वास्ते छपाया है। ..."

इससे प्रकट होता है कि सम्वत् १६८० के पूर्व शालिग्राम बुकसेलर ने भी माच की कुछ पुस्तकें छापी थीं। माच के अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण ही इन्दौर का कोई बुकसेलर उन्हें छापकर वचन का लोभ संवरण नहीं कर सका। 'नागजी दूदजी' की तो उक्त सम्वत् में तीसरी आवृत्ति प्रकाशित हो गई थी। उसमें भी उक्त सूचना छपी है। आजकल बालमुकुन्दजी के माचों की जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उनकी सूची सम्वत् एवं आवृत्ति-क्रम से नीचे दी जा रही है—

१. राजा हरिश्चन्द्र (प्रथम आवृत्ति सम्वत् १६८०), २. नागजी दूदजी (तृतीय आवृत्ति सम्वत् १६८२), ३. सेठ सेठानी (छठी आवृत्ति सम्वत् २००७), ४. ढोला मारूणी (छठी आवृत्ति सम्वत् १६८५), ५. देवर भौजाई (दसवीं आवृत्ति सम्वत् २००६), ६. मुबदुद मालगा (दसवीं आवृत्ति सम्वत् २००६), ७. राजा भरथरी (दसवीं आवृत्ति सम्वत् २००६), ८. नवल गेदापरी (प्रथम आवृत्ति सम्वत् १६६०), ६. कुँवर तेजसिंह (प्रथम आवृत्ति सम्वत् १६८२), १० रामलीला (प्रथम आवृत्ति सम्वत् १६८२), ११. कृष्णलीला (अप्रकाशित), १२. चित्र गहन (अप्रकाशित),

१३. चारण पंवारा (अप्रकाशित), १४. हीर राँझा (अप्रकाशित), १५. शिव लाला (अप्रकाशित), १६. बेताल पच्चीसी (अप्रकाशित)।

गुरु बालमुकुन्द जी ने सभी माच के खेलों को अपने ही मोहल्ले, जैसिंहपुरा में समय-समय पर खेला। जैसिंहपुरा के माच का स्थान भेरू के मन्दिर के सामने है, जिसकी स्वयं गुरु ने स्थापना की थी। इसका उल्लेख प्रत्येक माच के प्रारम्भ में दी गई 'भेरू जी की स्तुति'[1] में किया गया है। जैसिंहपुरा माचों के कारण गुरु जी के समय एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया था। यद्यपि जयसिंह द्वारा बसाये जाने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से उस स्थान का महत्त्व अब भी कम नहीं है। माच के आकर्षण से दर्शकों की बड़ी भीड़ वहाँ खिची चली आती थी। अपने एक पात्र द्वारा स्वयं गुरुजी ने इस बात का उल्लेख किया है :

"भोपाल सेर से चलकर आयो, उज्जन सेर देखूँगा बस्ती।
जैसिंहपुरा में माँच बन्यो है, मुलकों की आलम याँ हसती॥"[2]

गुरु बालमुकुन्द के जीवन-काल में माच का प्रचार दूर-दूर तक हो गया था। उनकी मूल प्रतियों से नकल उतारकर उन्हींके शिष्य गाँव-गाँव में फैल गए। अत्युक्ति न समझी जाय तो यह परम्परा पंजाब और हाथरस तक में पहुँची। गुरुजी के समकालीन सिंधिया-नरेश ने तो उन्हें निमन्त्रित करके ग्वालियर में माच करवाये थे और निकटवर्ती होल्कर-नरेश ने माचों से प्रभावित होकर गुरु जी को बहुत-सी जमीन दान में दी थी।

गुरु बालमुकुन्द की मृत्यु सम्वत् १९३२ में रविवार के दिन हुई। कहते हैं उस समय वे 'गेंदापरी' माच का अभिनय कर रहे थे। अन्ध-

1. रंगीला हे भेरव का ध्यान, सारदा को हिरदा में ग्यान ॥टेक॥
बिसाल रूप छोटी-सी मूरत, करो दुस्मन की हान।
जेसिंगपुरा में राज तुमारा चोर चारां खूँट में मान॥
कालो गोरो मालक मेरो, खेल रच्या चोगान।
साँचे को सन्मान जो देवे, मार दुष्ट का मान ॥टेक॥

२. 'हरिश्चन्द्र', पृष्ठ ९

विश्वासी लोग मैदारगी को ही गुरु की मृत्यु का कारण समझते हैं। मंच से उठाकर ही गुरु का शव चक्रतीर्थ ले जाया गया। शव जब चला तो उनके आगे-आगे उनके शिष्य माच गाते चले। माच के ही संगीत से उनके शव का अग्नि-संस्कार किया गया। माच की प्रसिद्धि और माचकार के *सम्मान का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है!*

बालमुकुन्द गुरु मालव-शैली के चित्रकार भी थे। कुछ चित्र उनके वंशजों के पास सुरक्षित हैं। उनका कण्ठ खुला और प्रभावशाली था। अभिनय के समय उनकी वाणी और व्यक्तित्व लोगों के हृदय को प्रभावित करने में बेजोड़ थे। गुरु ने सम्वत् १६०१ के पश्चात् माच लिखना आरम्भ किया, जो क्रम मृत्यु-पर्यन्त चलता रहा। माच के पुनरुद्धारक और नवीन शैली के प्रवर्तक के रूप में गुरु की साधना सदैव सम्माननीय रहेगी। उनके वंश-वृक्ष का आगामी प्रसार परिशिष्ट में दिया गया है।

कालूराम उस्ताद—बालमुकुन्द गुरु के माचों की लोकप्रियता ने उज्जैन के प्रतिभाशाली कवि कालूराम उस्ताद को कुछ वर्षों पश्चात् नवीन रचनाओं के सृजनार्थ प्रेरणा दी। यह प्रेरणा वस्तुतः गुरु बालमुकुन्द जी की दूसरी पीढ़ी के साथ स्पर्धा के रूप में विकसित हुई। गुरु के काफी बाद में होकर भी अपनी प्रतिभा और परिश्रम के आधार पर कालूराम उस्ताद ने गुरु की ही भाँति दौलतगंज (उज्जैन) में अपना अखाड़ा बना लिया। इनके लिखे हुए माचों के नाम हैं—१. प्रह्लाद लीला, २. हरिश्चन्द्र, ३. रामलीला, ४. चित्र मुकुट*, ५. मधुमालती*, ६. चन्द्रकला, ७. हीर-रांझा, ८. निहालदे सुल्तान, ९. ज्ञान आलम*, १०. नागवती*, ११. राजा छोगरतन*, १२. रुक्मणीहरण, चन्द्रकला*, १३. ढोल सुल्तानी, १४. राजा रिसालू, १५. इन्द्रसभा, १६. छबीली भटियारिन, १७. त्रिया-चरित्र और १८. हीरा मोती।

उक्त माचों का प्रचार गुरु बालमुकुन्द की रचनाओं के साथ होता गया। सभी रचनाएँ सम्वत् १९५० के पश्चात् आगामी २५ वर्षों के बीच

* सब प्रकाशित।

उस्ताद के प्रमुख साथियों में सुखदेव और पन्नालाल लावनीबाज़ में काव्य-प्रतिभा थी, उनकी अनेक कविताएँ संवत् १६६६ के सिंहस्थ में छप-कर काफ़ी प्रसिद्ध हुईं, यद्यपि उनमें तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता का प्रभाव स्पष्ट है। जिसका कालूराम उस्ताद की रचनाओं में अभाव है।

कालूरामजी का उपनाम 'दुर्बल' था। आपमें अभिनय की प्रतिभा न थी। केवल रचनाकार के नाते ही अपनी परम्परा चलाने में आप सफल हुए। लगभग ४० वर्ष की अवस्था में आपकी मृत्यु हुई।

अन्य परम्पराएँ

एक तीसरी परम्परा उज्जैन के मालियों में और है, जिसके प्रवर्तक राधाकिशन गुरु कहे जाते हैं। राधाकिशन गुरु के केवल ५ खेल हैं, जिनका आधार उक्त दोनों परम्पराओं की रचनाएँ हैं। वही धज, वही शैली और वही टेकनीक। इस बीच मालवा-स्थित गूजर गौड़ों ने भी अपनी माच-परम्परा चलानी चाही थी, पर वह चली नहीं। राधाकिशन गुरु की परम्परा में सिद्ध नाई नया माचकार है। उसकी कुछ रचनाएँ गत वर्ष ही उज्जैन में खेली गईं। गुरु बालमुकुन्द और कालूराम उस्ताद की परम्पराओं में पुराने माच ही खेले जाते हैं। नये माचकारों में नीमच के ख्यालकार रामजीलाल बन्धु, लालजी नन्दराम, मुड़ेवाले रामरतन दरक आदि के कुछ खेल छपे हैं, पर वे विशेष ख्याति प्राप्त न कर सके।

मालवी का नया-पुराना माच-साहित्य कुल मिलाकर मालवा की जन-रुचि का द्योतक है। यद्यपि इन माचों की प्रवृत्ति शृङ्गारी ही है तथापि शिक्षा के अभाव में लिखे गए स्थानीय भाषा के इस साहित्य को इसलिए महत्त्व देना चाहिए कि यह पिछले डेढ़ सौ वर्षों से लगभग ६०-७० लाख मालवी जनता को प्रभावित करने में सफल हुआ है। पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त अन्य माच-कथाएँ किंवदन्तियों पर आधारित हैं तथा उनमें प्रेमाश्रयी शाखा का स्पष्ट प्रभाव है। गीति-तत्त्व लोक-गीतों से प्रभावित है।

कहीं-कहीं तो लोक-गीतों की पंक्तियाँ ज्यों-की-त्यों अपना ली गई हैं।

माच खुले रंगमंच का ही स्वरूप है। रामलीला, नौटंकी, ख्याल, यात्रा, भवाई, कीर्तनिया आदि विभिन्न लोक-नाट्य-शैलियों में माच का भी अपना विशिष्ट स्थान है। इसमें नेपथ्य आदि के बिना सभी प्रकार के दृश्यों का आयोजन लोक-कल्पना के विषय हैं। अभिनेता ढोलक और अपनी ऊँची आवाज के सहारे मंच पर अपनी कला का कौशल दिखाते हैं। माच की कथा का सूत्र भंग न हो इसके लिए गद्य का प्रयोग कम-से-कम किया जाता है। संगीत सूत्र को सँभाले रहता है। इसलिए ढोलक का अस्तित्व माच का प्राण है।

माच के विषय में श्री त्रिभुवननाथ दवे वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन कर रहे हैं।

मालवी का सन्त-साहित्य धार्मिक आन्दोलनों से प्रभावित रहा है। किन्तु ऐसा कितना ही साहित्य लुप्त हो चुका है, और जो है उसका यथोचित उद्धार किया जाना शेष है। पोथियों के रूप में सुरक्षित सामग्री घरों, मन्दिरों और मठों में दबी पड़ी है। अतः किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व हमें उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही स्थूल रूप से विचार करना होगा।

मालवी का सन्त-साहित्य 'पन्थी' है, उस पर विभिन्न धार्मिक मत-मतान्तरों की छाया और उससे उत्पन्न पन्थों की छाप है। जो साहित्य लिपिबद्ध है—आंशिक रूप से लिखित और आंशिक रूप से मुद्रित है—उसकी गणना तो बैठ जाती है, पर अलिखित—मौखिक—भजनी साहित्य का वर्गीकरण किंचित् क्लिष्ट विषय है। जिस साहित्य का उल्लेख आगे किया जा रहा है वह गेय है। अतः पद्य का अंग ही मालवी में सन्त-साहित्य की दृष्टि से अभी तक ज्ञात हुआ है। सन्त-साहित्य की प्राप्य सामग्री का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है :

सन्त-साहित्य

- पन्थी (निर्गुणी)
  - रचित
  - लोक-प्रचलित
- भजनी (सगुणी)
  - रचित
  - लोक-प्रचलित
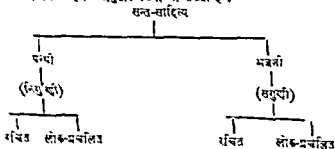
निर्गुणी-रचित साहित्य के अन्तर्गत 'गोरख वाणी', बाबा हरिदास के पद तथा गुलाबनन्द महाराज, केशवानन्द एवं नित्यानन्द महाराज की स्फुट रचनाओं को स्थान दिया जा सकता है। लोक-प्रचलित निर्गुणी साहित्य लोक-साहित्य ही है। इसमें 'रामदेवजी', 'कबीरा', 'गोरख', 'भरथरी-वैराग' आदि लोक-गीत एवं माटी हरजी, अणदासोनी, भाऊदास, सुखराम आदि की छाप वाले रामदेर, कबीरा आदि पद मालवी में विशेष स्थान पाते हैं। यद्यपि सामग्री के अभाव में इतनी सामग्री से ही सन्तोष करना पड़ता है तथापि निर्गुणी-साहित्य की खोज की जाने पर अमूल्य ग्रन्थों के उपलब्ध होने की सम्भावना है।

सगुणी साहित्य भजनी है। प्रायः भजन के रूप से कीर्तन अथवा धार्मिक आयोजनों का यह विषय है। इसमें रचित 'मालवी रामायण', (श्रीनारायण व्यास), 'लक्ष्मीकान्त पदावली' (स्वामी दीनानाथ) एवं कुछ अन्य फुटकर ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

लोक-प्रचलित सगुणी साहित्य में चन्द्रसखी और सन्त सिंगा के गीत दूर-दूर तक प्रचलित हैं।

गोरखनाथजी को ग्यान—'गोरखनाथ जी को ग्यान' ४८ दोहों की छोटी-सी प्रति है, जो उज्जैन से ही मिली है। इस प्रति में लेखन-काल एवं लिखने वाले का नाम नहीं है। केवल किसी नाथ द्वारा लिखे जाने का अनुमान 'नाथ कहै' के निरन्तर प्रयोग से पुष्ट होता है। पुस्तिका की लिखावट लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व की प्रतीत होती है। कुछ दोहे उदाहरणार्थ नीचे दिये जाते हैं, जिनको मालवी व्रज से प्रभावित है, जो सम्भवतः भक्ति-आन्दोलन के प्रभाववश एक प्रवृत्ति रही है :

> काटे सेती काँटा निकसे, कुन्जी सेती ताला।
> सिध ही तै सिध पाइए, तब घटि हांइ उजियाला॥
>
> सर्प रहे बम्बी उठि नाचै, करविन देरू बाजै।
> नाथ कहे जो योषप जीतै, पंड पडै तो सतगुर लाजै।

बाबा हरिदास—बाबा हरिदास अवन्तिका के समीप किसी मठ में

रहा करते थे। उनका साहित्य हाल ही मे उज्जैन की 'ओरिएण्टल लाइब्रेरी' मे आया है। कुछ प्रतियाँ उनके शिष्यो के पास भी मिल जाती है। बाबाजी ने प्रायः दोहे लिखे है। निर्गुणी धारा की समस्त पदावली का प्रयोग उनकी रचनाओ मे हुआ है। प्राप्त सामग्री अभी सम्पादनाधीन है, अतः उदाहरण स्वरूप कोई दोहा अथवा पद यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। बाबाजी के जन्म एवं रचना-सम्बन्धी अन्य जानकारी अभी प्रकाश मे आनी शेष है।

गुप्तानन्द महाराज—गुप्तानन्द महाराज-कृत 'चौदह रत्न', 'गुप्त सागर तथा गुप्त ज्ञान गुटका' नामक सयुक्त ग्रन्थ की तृतीय आवृत्ति सम्वत् १९९३ मे हुई। इसमे २७४ गेय पद है।

गुप्तानन्दजी मन्दसौर (उत्तरी मालवा) के विष्णुपुरी नामक स्थान मे सम्वत् १९७६ मे समाधिस्थ हुए। उक्त पुस्तक प्रथम बार सम्वत् १९७८ में इन्दौर मे प्रकाशित हुई। गुप्तानन्दजी के सम्बन्ध मे अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

'चौदह रत्न' और 'गुप्त सागर' खड़ी बोली, ब्रज और मालवी-मिश्रित सधुक्कड़ी भाषा मे है। 'गुप्त ज्ञान गुटका' दोहा, लावनी और शेरों मे लिखा गया है। पूरी पुस्तक मे ख्याल, कविता, खड़ी चाल, कव्वाली, होली, कुण्डलिया, भूला, श्लोक आदि सभी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। विषय निर्गुणी है, किन्तु सगुणी भक्ति का प्रभाव भी साथ-साथ चलता है। विचारो मे प्राचीन कवियो की भावनाओ और प्रचलित पदावलियो की पुनरावृत्ति स्वभावतः होती गई है। उदाहरणार्थ कबीर के भावो से प्रति-बिंबित निम्न लावनी देखिए :

लावनी (चाल दून)

मजि चलो सुहागिन साज बाज घर पी के।
सखी एजो, पिया को बेगि बुलाई है।
चलना पड़े जरूर सवारी सजके आई है ॥टेक॥
रहेर बारि खड़े मनिहार प्यार कब होवे।

निर्गुणी-संत साहित्य के अन्तर्गत 'गोरख वाणी', बाबा हरिदास के पद तथा गुमानन्द महाराज, केशवानन्द एवं नित्यानन्द महाराज की कुछ रचनाओं को स्थान दिया जा सकता है। लोक-प्रचलित निर्गुणी साहित्य लोक-साहित्य ही है। इसमें 'रामदेवजी', 'कबीर', 'गोरख', 'भरथरी-पिंगला' आदि लोक-गीत एवं माई हरजी, अणुदासगोसाँ, माऊदास, सुरदास आदि की छाप वाले रामदेव, कबीर आदि पद मालवी में विशेष स्थान पाते हैं। यद्यपि सामग्री के अभाव में इतनी सामग्री से ही सन्तोष करना पड़ता है तथापि निर्गुणी-साहित्य की खोज की जाने पर अमूल्य ग्रन्थों के उपलब्ध होने की सम्भावना है।

सगुणी साहित्य भजनी है। प्रायः भजन के रूप से कीर्तन अथवा धार्मिक आयोजनों का यह विषय है। इसमें रचित 'मालवी रामायण', (श्रीनारायण व्यास), 'लक्ष्मीकान्त पदावली' (स्वामी दीनानाथ) एवं कुछ अन्य फुटकर ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

लोक-प्रचलित सगुणी साहित्य में चन्द्रसखी और सन्त सिंगा के गीत दूर-दूर तक प्रचलित हैं।

गोरखनाथजी को ग्यान—'गोरखनाथ जी को ग्यान' ४८ दोहों की छोटी-सी प्रति है, जो उज्जैन से ही मिली है। इस प्रति में लेखन-काल एवं लिखने वाले का नाम नहीं है। केवल किसी नाथ द्वारा लिखे जाने का अनुमान 'नाथ कहै' के निरन्तर प्रयोग से पुष्ट होता है। पुस्तिका की लिखावट लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की प्रतीत होती है। कुछ दोहे उदाहरणार्थ नीचे दिये जाते हैं, जिनकी मालवी ब्रज से प्रभावित है, जो सम्भवतः भक्ति-आन्दोलन के प्रभाववश एक प्रवृत्ति रही है :

> काटे सेती काँटा निकसे, कुन्जी सेती ताला।
> सिध ही तै सिध पाइए, तब घटि होइ उजियाला॥
>
> सर्प रहे मरखी उठि नाचै, कराबिन डेरूँ बाजै।
> नाथ कहे जो योवय जीतै, पंड पड़े तो सतगुर लाजै।

बाबा हरिदास—बाबा हरिदास अवन्तिका के समीप किसी मठ में

रहा करते थे। उनका साहित्य हाल ही में उज्जैन की 'ओरियण्टल लाइब्रेरी' में आया है। कुछ प्रतियाँ उनके शिष्यों के पास भी मिल जाती हैं। बाबाजी ने प्रायः दोहे लिखे हैं। निर्गुणी धारा की समस्त पदावली का प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है। प्राप्त सामग्री अभी सम्पादनाधीन है, अतः उदाहरण स्वरूप कोई दोहा अथवा पद यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। बाबाजी के जन्म एवं रचना-सम्बन्धी अन्य जानकारी अभी प्रकाश में आनी शेष है।

गुमानन्द महाराज—गुमानन्द महाराज-कृत 'चौदह रत्न', 'गुप्त सागर तथा गुप्त ज्ञान गुटका' नामक संयुक्त ग्रन्थ की तृतीय आवृत्ति सम्वत् १९६३ में हुई। इसमें ३७४ गेय पद हैं।

गुमानन्दजी मन्दसौर (उत्तरी मालवा) के विष्णुपुरी नामक स्थान में सम्वत् १९७६ में समाधिस्थ हुए। उक्त पुस्तक प्रथम बार सम्वत् १९७८ में इन्दौर में प्रकाशित हुई। गुमानन्दजी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

'चौदह रत्न' और 'गुप्त सागर' खड़ी बोली, ब्रज और मालवी-मिश्रित सधुक्कड़ी भाषा में है। 'गुप्त ज्ञान गुटका' दोहा, लावनी और शैरों में लिखा गया है। पूरी पुस्तक में ख्याल, कविता, खड़ी चाल, कव्वाली, होली, कुण्डलिया, झूला, त्रोटक आदि सभी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। विषय निर्गुणी है, किन्तु सगुणी भक्ति का प्रभाव भी साथ-साथ चलता है। विचारों में प्राचीन कवियों की भावनाओं और प्रचलित पदावलियों की पुनरावृत्ति स्वभावतः होती गई है। उदाहरणार्थ कबीर के भावों से अनुरंजित निम्न लावनी देखिए :

लावनी (चाल दून)

सजि चलो सुहागिन साज आज घर पी के।
अजी एजी, पिया को वेगि बुलाई है।
चलना पड़े जरूर सवारी सजके आई है ॥टेक॥
रहे खारि खड़े कनिहार त्यार अब होजे।

थाली फूटी, जरा सब बालिनी लो लोटो ॥
का पालंग पर की सूतें मस्त गुरु गुप्त गैबी बोली ॥[1]

'खाली घड़ी' का प्रयोग गुलाबराव जी के लिए स्वाभाविक हो गया है। उनके कुछ पदों में मालवी का प्रयोग स्पष्ट दिखता है :

बँगला खूब बनाया है, चतुर कारीगर करतार ॥ टेक ॥
पाँच रंग की ईंट लगी है, नाम धातु का गारा।
बिन चौखट नाम नव कोई, अनगिनत झरोखा प्यारा ॥१॥
बिना माया का चौक रच्या है, नाना रंग पसारा।
चार बाट चौरासी नलियाँ, जिन में लगे किवारा ॥२॥
इस बँगले में बाग लगा है, मन माली रखवारा।
साढ़े तीन करोड़ वृक्ष हैं, खिल रही चमन बहारा ॥३॥
निरोह बहत्तर नदियाँ बहती, छूटी रही जलधारा।
अन्तःकरण अगाध सरोवर, वृत्ति छुटे फुहारा ॥४॥
इस बँगले में राग रच्या है, नाना राग उचारा।
अनहद शब्द होत दिन राती, सोहम् सोहम् सारा ॥५॥
इस बँगले में बाजे बाजे उठ रही झंकारा।
ढोलक झाँझ बजे हरमुनिया, खिच रही स्वास सितारा ॥६॥
बाजे तीन बजाय रहे हैं, स्वर अरु ताल निकारा।
पाँच पचीसों पातर नाचे, देखत देखन हारा ॥७॥
तीन लोक बँगले के अन्दर, नाना जगत पसारा।
गुप्त रूप से आप बिराजे, सबका जानन हारा ॥८॥[2]

भजन

जिन जान्या अपने आपको, सो निर्भय होके सोवे ॥टेक॥
हिरदे की ग्रंथी जिन तोड़ी, संसों की सब मटुकी फोड़ी।

---

१. 'गुप्तज्ञान गुटका', पृष्ठ १८०।
२. वही, पृष्ठ

विधि निषेध की टटि गई ओटी, फिर जपै कौन के जाप को॥
करमन में कैसे रोवे··· ॥३॥ इत्यादि ।[1]

केशवानन्द जी महाराज—गुमानन्द जी के शिष्य केशवानन्द जी की रचनाएँ 'तत्त्वज्ञान गुटका' में संग्रहीत हैं, जिसका प्रकाशन प्रथम बार भुवनेश्वरी प्रेस रतलाम में सं० १९८२ में हुआ। यह ग्रन्थ आत्म-ज्ञान-सम्बन्धी १२४ निर्गुणी गेय पदों का संकलन है। अपने गुरु की भाँति आपने भी राग-रागनियों में अपने भाव निबद्ध किये हैं। आपके विशेष प्रिय छन्द गजल एवं कव्वाली हैं; पर कुण्डलियाँ, दोहे, कवित्त एवं लोक-छन्द माड़, बधावा आदि का प्रयोग भी आपने किया है।

'तत्त्वज्ञान गुटका' की भाषा उत्तरी मालवी है, क्योंकि रचयिता का कार्य-क्षेत्र प्रायः मन्दसौर और प्रतापगढ़ की ओर ही रहा। एक पद देखिए :

जोगिया

राम नाम कह मैना, तू सो लख गुरु मुख की सेना ॥टेक॥
माया पारधी फंद लगायो, लाला फल धरेना।
लालच के बस तू जाइ बैठी, फँस गये दोऊ डैना ॥१॥
बँधे-बँधे में मैना बोले, अब गुरु मोहि छोड़ेना।
अब की बेर छुड़ा मोहि देना, मानूँ गी आप कहेना ॥२॥
रामनाम से फंद छुड़ाये, ज्ञान विराग दोऊ देना।
वही फंद में शरण में आई, गुरुजी के चरण गहेना ॥३॥
निरभय होके बस पिछाना, मिटि गये काल के ताना।
केशवानन्द आनन्द कन्द मिल जग में अबना बहेना ॥४॥[2]

नित्यानन्द जी महाराज—नित्यानन्द जी-कृत 'नित्यानन्द विलास' की प्रथमावृत्ति रतलाम ही से प्रकाशित हुई थी। तृतीय आवृत्ति सम्वत् १९९४ में छपी। नित्यानन्द जी की रचनाओं को संग्रहीत करने का श्रेय

---

१. 'गुप्तज्ञान गुटका', पृष्ठ २२७।
२. 'तत्त्वज्ञान गुटका', पृष्ठ ४८३।

स्व० कन्हैयालाल जी उपाध्याय (रतलाम) की है। नित्यानन्द जी के पदों का प्रचार मालवा के बाहर गुजरात में भी है। तृतीयावृत्ति में 'नित्यानन्द विलास' के साथ कुछ छोटे-मोटे ग्रन्थ भी जोड़ दिए गए हैं, जिनमें 'गुरु गीता', 'प्रश्नोत्तरी', 'जननी सुत उपदेश', 'बाप जी का उपदेश', 'श्रीराम विनोद', 'वार्ता प्रसंग' आदि हैं। महत्त्व का अंश (मालवी की दृष्टि से) 'नित्यानन्द विलास' ही है। इसमें राग-रागनियों में गुम्फित वेदान्ती पदों का संग्रह कर दिया गया है। यद्यपि अनेक पद मधुक्कड़ी मालवी में हैं, पर कुछ खड़ी बोली, उर्दू और व्रज-मिश्रित में भी हैं। मालवी पदों में गुजराती और राजस्थानी का प्रभाव है। तत्त्व-ज्ञान, वेदान्त और निर्गुण कथी का प्रभाव सभी पदों में है। नित्यानन्द के समक्ष सन्त-साहित्य का अपार भण्डार था, किन्तु विशेष रूप से उन पर निर्गुणी धारा का प्रभाव रहा। मालवी के कुछ पदों की बानगी लीजिए :

राग सोरठ मल्हार

मन म्हारो, कोई नहीं हितकारी।
तू नित धंद करे घंहाई, होय दुर्गति म्हारी ॥टेक॥
देख खोल चखु तूं दोनूं, कौन वस्तु है म्हारी।
सबहि विभूति है श्रीहरि को तूं कहे म्हारी-म्हारी ॥[1]

राग दादरा

पंखा लेके गुरु जी मैं तो हाजर खड़ी ॥टेक॥
लख चौरासी ढूँढ थकी गुरु, अब चरनन में आय पड़ी।
देख दया की अबे दृष्टि से, सुमर रही मैं तो घड़ी जी घड़ी।
अब हटने की नहिं ठोड़ि से, निर्भय होके मैं तो आय अड़ी।
हर गुरु दुख सकल तन-मन को, नित्यानन्द निज देदोजी जड़ी ॥[2]

१. 'नित्यानन्द विलास', पृष्ठ १०१।
२. वही, पृष्ठ ११६।

लोक-प्रचलित निर्गुणी साहित्य खोज का विषय है। कबीर एवं लोक-प्रचलित ऐसे साहित्य के अन्योन्याश्रित प्रभाव का उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है : "कितने ही सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनका साहित्य तो उपलब्ध नहीं है, पर परम्परा अभी बची हुई है। नाथ मार्ग के बारह पन्थों में से प्रायः सभी जीवित हैं; पर जहाँ तक मालूम है एक-दो को छोड़कर बाकी का कोई साहित्य नहीं बचा है। इन सम्प्रदायों के साधुओं और गृहस्थों में अपने प्रतिष्ठाता के सम्बन्ध में कुछ कथाएँ बची हुई हैं। किसी-किसी के स्थापित मठ और मन्दिर वर्तमान हैं, उनमें कुछ विशेष ढंग के अनुष्ठान होते हैं। इन लोक-कथाओं और अनुष्ठानों के भीतर से इन सम्प्रदायों की विशेषता का कुछ-कुछ पता चलता है—"[1]

"दक्षिण भारत की लोक-भाषा में लिखे हुए भक्ति-मूलक ग्रन्थ आगे चलकर जबरदस्त दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों की स्थापना के कारण हुए हैं। इस तथ्य से यह अनुमान करना असंगत नहीं है कि अन्यान्य धर्म-सम्प्रदायों और साधन-मार्गों के विकास में लोक-भाषा का भी हाथ रहा होगा।"[2]

उक्त दृष्टि से हम देखें तो निश्चय ही लोक-प्रचलित साहित्य से कितने ही लुप्त सम्प्रदायों की कड़ियाँ जुड़ सकती हैं। कबीर के पश्चात् कबीर के नाम से अनेक पन्थ चले, जिनका पता 'कबीरा' लोक-गीतों से मिलता है। 'रामदेव' के गीत रामदेव की अनुश्रुति के अंश हैं। जो रामदेव के इतिहास-परक अंश को प्रकाश में लाने के लिए आमन्त्रित करते हैं। भाटी हरजी, माळदास आदि रामदेव के परम भक्त मालवा में हो गए हैं, जो कबीर की भाँति निम्न वर्ग से आये। यों निर्गुणी साहित्य का अधिकांश भाग निम्न जातियों के पास ही है, जिनमें बलाई, चमार, भाम्बी आदि मुख्य हैं। डॉ० अम्बेडकर का यह सिद्धान्त है कि बौद्धों के प्रति घोर विरोधी वातावरण ने

१. 'मध्यकालीन धर्म साधना', धर्म साधना का साहित्य, पृष्ठ १३।
२. वही, वेद विरोधी स्वर, पृष्ठ १८।

आज भी उनकी मालवा में उनके गीत अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। राजस्थान के खानदानी गवैयों में भी चन्द्रसखी के गीत प्रचलित हैं, जिससे हमारा विश्वास पुष्ट होता है। भाषा की दृष्टि से एवं उसके गीतों की प्रवृत्तियों से उक्त विश्वास को सहज ही सम्बल प्राप्त है। यद्यपि अभी तक चन्द्रसखी के गीतों की कोई प्राचीन प्रति प्राप्त नहीं हुई, तथापि लोक-प्रचलित गीतों से (कतिपय राजस्थानी प्रयोगों के होते हुए भी) यह प्रमाणित है कि चन्द्रसखी ने अपने पदों की रचना मालवी में ही की थी।

'मारवाड़ी भजन सागर'[1] में चन्द्रसखी के ५४ पद प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त नरोत्तमदास स्वामी तथा मनोहर शर्मा द्वारा संकलित पदों को मिलाकर श्री नाहटा जी के अनुसार 'चन्द्रसखी' के सौ से अधिक भजन प्रकाशित हो चुके हैं। मालवा में श्री चिन्तामणि उपाध्याय ने लगभग

१. राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, १९६० ।

के आस-पास राजस्थान में अन्दा रहा है।"[1]

नाहटाजी उक्त प्रमाण के आधार पर चन्द्रसखी का सं० १७०० के आस-पास होना अधिक संभव मानते हैं।

चन्द्रसखी के भजन—चन्द्रसखी मुख्य रूप से कृष्णाश्रयी शाखा की गायिका है। राम-सम्बन्धी परम्परागत किंवदन्तियों के प्रसंग कवयित्री ने अधिक मात्रा में गाए हैं। श्रीकृष्ण मनिहार बनकर राधिका से मिलने आते हैं। कवयित्री ने सरल शब्दों में इसका चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

श्रीकृष्णचन्द्र मणियार बने
वृसभान भवन में लाई चूड़ियाँ।
विन्द्रावन की कुन्ज गलिन में,
केव फिरे कोई पेरो चूड़ियाँ।
गोरा बदन राधेजी ठाडे,
हमको पेरई दो हरि चूड़ियाँ।
अंगली पकड़ पोंचो पकड़यो,
हँसु हँसु मोड़ी मोरी गोरा बईयाँ॥

एक गीत में राधिका को नाग ने डस लिया है। कृष्ण वैद्य बनकर उपचारार्थ उसके निकट जाते हैं। संयोग के लिए कितने ही प्रकरणों की कल्पना चन्द्रसखी के सरल भावों में गुम्फित है। उसने उन्हीं प्रसंगों को अपनाया है जिनका जीवन से सम्बन्ध है। कल्पना वहाँ सत्य की अनुगामिनी है। उपलब्ध गीतों में काव्यगत दोषों के लिए वह क्षम्य है। धुन में आवेष्ठित एक पद देखिए :

(राग सारंग)

ब्रज मण्डल देस दिखावो रसिया।
ब्रज मण्डल की माटी नीको पाणी
गोरी गोरी नार सुघड़ रसिया॥१॥
कमर चन्दन को हाल्यों विराजे,
धवल रेसमी सुरंग कसिया॥२॥

1. 'विक्रम' मार्गशीर्ष, २००६।

भजनकार द्वारा स्वभावतः यह टेक प्रायः सभी गीतों मे उतरी है। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि चन्द्रसखी शिक्षिता न थीं। उनमे तन्मयता, सारल्य और अपने उपास्य के प्रति निष्कपट लगन थी।

चन्द्रसखी के गीतों में गुजराती का प्रभाव लक्षित है। सं० १७०० के आस-पास मालवा और गुजरात मे पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ है। राजस्थानीपन की तरह प्रभाववश चन्द्रसखी के कुछ भजनों मे अवश्य ही गुजराती प्रभाव आ गया है। चन्द्रसखी-सम्बन्धी विभिन्न क्षेत्रों से जानकारी अपेक्षित है। गुजरातवर्ती साहित्यिकों से भी इस विषय में आशा की जा सकती है। मध्यभारत के सभी वर्गों एवं राजस्थान के साहित्यिकों एवं पाठकों से निवेदन है कि वे अपनी जानकारी प्रकाश मे लाकर चन्द्रसखी के प्रेम रस से मालव-जीवन को परिप्लावित करें।

संत सिंगा—निमाड़ के कृषि-प्रधान जीवन में संत सिंगा का वर्चस्व किसी भी अन्य संत अथवा लोक-कवि की अपेक्षा कहीं अधिक है। मालवा के ऊँचे पटार से उतरते ही सतपुड़ा की शैल-मालाओं तक के निमाड़ मे कृषकों और उनके मवेशियों को संत सिंगा की आन लगती है। यह संत कवि अपने सम्बन्ध मे अनेक विलक्षण किंवदंतियों से समृद्ध और गीतों मे बंद है।

इसमे संदेह नहीं कि सिंगा के भजनों का प्रसार निमाड़ के गाँव-गाँव में है। उनके नाम से छत्तीस 'निशान' चलते हैं, जो भादों में अपने स्थान से निकलकर होली पर वापस लौटते हैं। श्री सिंगा के नाम से बालावड़, टवाणा, पीपल्या और मोइण्या मे प्रतिवर्ष मेले लगते हैं; जहाँ हजारों की संख्या मे मवेशियों का क्रय-विक्रय होता है, मान उतारी जाती है और भक्त-मण्डलियाँ सिंगा जी की स्तुति करती हैं।

कहते हैं कि सिंगाजी के गुरु ने उन्हें एक दिन आज्ञा दी थी कि यदि मैं निद्रा में होऊँ और पूजा का समय हो जाय तो मुझे जगा देना। गुरु के कष्ट का अनुमान करके सफेद मकड़ी के आने पर स्वयं सिंगाजी ने पूजा कर दी। निद्रा-भंग होने पर गुरु क्रुद्ध हुए और उन्होंने सिंगाजी को आजन्म

से सहज ही ज्ञात होता है कि सिंगाजी का कवि कबीर की भाँति फक्कड़ और मस्त है। वह राम और कृष्ण दोनों का उपासक है। वह जीवन के अनुभवों को निर्गुणी धारा में सहज ही मोड़कर बहुत ही बड़ी बात कह जाता है। निमाड़ी साहित्य के अन्वेषक श्री रामनारायण उपाध्याय ने सिंगाजी की कुछ पद-पंक्तियों को प्रकाशित किया है। उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:

पाणी पवन मे पालना, जैसा सुवां में धाम।
ज्यों हो शशि का चाँदणा, ऐसा मेरा राम॥

सगला होयगा ध्यान का पूजा,
अपुरुष न होणु पापी रे।
जाप का ध्यान अजापा हुई न,
तेरा एक खोणु खापी रे॥

जीवन है सासरिया मेरा, मरण है पियरिया रे।

निश्चय ही सिंगाजी की रचनाओं पर सिद्धों की उस परम्परा की छाप है, जो कबीर और उनकी परम्परा में आने वाले अनेक कवियों की रचनाओं में मिलती है।

अन्त में सिंगाजी का एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है:

ऐसा नर कू सेवना जिन जग कू जिलाया रे
बाबा भोपा सब कहे जिन ठग खायी दुनिया रे
जिन घर का सब मरी गया वाकू क्यों न जिलाया रे
ऐसे नर कू सेवणा ······
बरत करे तो भए आतमा कलपावे
फिरता-फिरता मरी गया वा नर बैकुण्ठ जावे
ऐसे नर कूँ सेवणा·········
तिरथ करे सो क्या भए असनान करावे
जे नर जल कू सेवता वा मगर कहावे
ऐसे नर कूँ सेवण

अगन कोटि एक फल है नित साधू जिमावे
कहे अत मिला देवास जो पा मर बैकुंठ जावे
ऐसे मर कू सेवणा……

दीनानाथ जी—भक्ती रचित साहित्य के अन्तर्गत अवन्तिका के १३० विद्वान् दीनानाथ जी के पद विशेष उल्लेखनीय हैं। आप ज्योतिष एवं संस्कृत-साहित्य के विद्वान् थे। आपने ज्योतिष-सम्बन्धी कई पद लिखे हैं। तथा मालवी भाषा में 'लक्ष्मी कान्त पदावली' की रचना की है। उसमें की एक रचना देखिये :

नन्द वंश को ढाढ़ी आयो, नन्दभवन को ढाढ़ी।
तीस कोस दोपेरो में आयो, को मिल्या ना गाड़ी॥
नन्दगाम को पंथ कठिन है, बीस कोस की झाड़ी।
कचर-बचर सब साथे आया, छ छोरा दो गाड़ी॥
बुड्ढा-बुड्ढी पाछे मेल्यो, साथे छोटी लाड़ी।
बाल-बच्चा सब हाजर बैठा, चेली दूजे थारी॥
घर खटलो मुक्काम धरयो है, साठ भैंस सो पाड़ी।
साठ बरस की आस म्हारी, ढंढूँ खूब बधाई।
छुक छपीली छोटी-मोटी लावे जिनगी सारी॥
'दीनानाथ' बधाई दीनी, ढाढ़ी के मनमानी।
अटल रहो यह भाग तुम्हारो, पूरो आस तुम्हारी॥

श्रीनारायण जी—दीनानाथ जी के पश्चात् दूसरे विद्वान् श्रीनारायण-जी व्यास हैं। आपने श्रीगणेश एवं पंचमुखी हनुमान की स्तुति में अनेक पद लिखे। कुण्डलिया छन्द में 'मालवी रामायण' आपका उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

अन्य रचनाकार—आगर के भेरू गुरु, मुगलखाँ, चैनराम और मोती गुरु 'कलगी अखाड़े' के प्रसिद्ध कवि थे। खेद है कि उनकी रचनाएँ अब नहीं मिलतीं। तुर्रा अखाड़े के बलदेव उस्ताद की रचनाएँ आगर के कागदी बन्धुओं के पास सुरक्षित हैं। कहते हैं उनके संग्रह में बलदेव उस्ताद की लगभग १६० स्फुट रचनाएँ हैं। श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय के प्रयत्नों

से सहज ही ज्ञात होता है कि सिंगाजी का कवि कबीर की भाँति फक्कड़ और मस्त है। वह राम और कृष्ण दोनों का उपासक है। वह जीवन के अनुभवों को निर्गुणी भाव में सहज ही जोड़कर बहुत ही बड़ी बात कह जाता है। निमाड़ी साहित्य के अध्येता श्री रामनारायण उपाध्याय ने सिंगाजी की कुछ पद-पंक्तियों को प्रकाशित किया है। उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:

पाणी पवन से पातला, जैसा सुवा में घाम।
ज्यों हो शशि का चाँदणा, ऐसा मेरा राम॥

अगला होयगा आग का पूला,
अपुण न होणु पाणी रे।
जाण का आग बुझाण हुई न,
तरव एक छेणु छाणी रे॥

जीवन है सासरिया मेरा, मरण है पियरिया रे।

निश्चय ही सिंगाजी की रचनाओं पर सिद्धों की उस परम्परा की छाप है, जो कबीर और उनकी परम्परा में आने वाले अनेक कवियों की रचनाओं में मिलती है।

अन्त मे सिंगाजी का एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है :

ऐसा नर कू सेवना जिन जग कू जिलाया रे
बाबा भोपा सब कहे जिन ठग खायी दुनिया रे
जिन घर का सब मरी गया वाकू क्यों न जिलाया रे
ऐसे नर कू सेवणा........
बरत करे तो भए आत्मा कलपाये
फिरता-हिरता मरी गया वा नर बैकुण्ठ जावे
ऐसे नर कूँ सेवणा........
तिरथ करे सो क्या भए असनान कराने
जे नर जल कू सेवत
ऐसे नर कूँ सेवणा ..

जगन कोटि एकू फल है नित साधू जिमावे
कह जग सिगा पेवाय जो या नर बैकुण्ठ जावे
ऐसे नर कू सेवया······

दीनानाथ जी—भक्ती रचित साहित्य के अन्तर्गत अवन्तिका के स्व० विद्वान् दीनानाथ जी के पद विशेष उल्लेखनीय हैं। आप ज्योतिष एवं संस्कृत-साहित्य के विद्वान् थे। आपने ज्योतिष-सम्बन्धी कई पद लिखे हैं। तथा मालवी भाषा में *'लक्ष्मी कान्त पदावली'* की रचना की है। उसमें की एक रचना देखिये :

नन्द वंस को ढाढ़ो आयो, नन्दवंस को ढाढ़ी।
बीस कोस दोपेरी में आयो, को गियो ना गाड़ी॥
नन्दगाम को पंथ कठिन है, बीस कोस की झाड़ी।
कचर-बचर सब साथे आया, छे छोरा दो गाड़ी॥
बुड्ढी-टुड्ढी पाछे मेली, साथे छोटी लाड़ी।
बाल-बच्चा सब हाजर बैठा, चेली छज्जे बाड़ी॥
घर खटलो मुकदाम धर्यो है, साठ भैंस सो पाड़ी।
साठ बरस की आसा म्हारी, लेवूँ खूब बधाई।
छुन्न ढपोलो छोटी-मोटी खावे जिनगी सारी॥
'दीनानाथ' बधाई दीनी, ढाढ़ी के मनमानी।
अटल रहो यह भाग तुम्हारो, पूरो काम तुम्हारो॥

श्रीनारायण जी—दीनानाथ जी के पश्चात् दूसरे विद्वान् श्रीनारायण-जी व्यास हैं। आपने श्रीगणेश एवं पवनपुत्र हनुमान की स्तुति में अनेक पद लिखे। कुण्डलिया छंद में 'मालवी रामायण' आपका उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

अन्य रचनाकार—मालव के मेरू गुरु, कुंदनजी, चेनराम और मोती गुरु 'कलगी अखाड़े' के प्रसिद्ध कवि थे। खेद है कि उनकी रचनाएँ अब नहीं मिलती। तुर्रा अखाड़े के बलदेव उस्ताद की रचनाएँ मालव के बागरी बन्धुओं के पास सुरक्षित हैं। कहते हैं उनके संग्रह में बलदेव उस्ताद की लगभग १६० स्फुट रचनाएँ हैं। श्री गोविन्दवल्लभ उपाध्याय के अनुसार

से कुछ मालवी प्रकाश में आई है। श्रीगणेश के प्रति लिखी गई उनकी एक स्तुति है:

'मैं प्रथम मनाऊँ गणपति गजानन्द
रिद्ध-सिद्ध के मालक तुम होजो विघन अंतक ॥ टेक ॥
प्रथम सुमरूं गजानन ध्यान। देवा ध्यान घन-विघन-हरन ॥
मालक मैं प्रथम करूँ ध्यान। मैं भरजरदार मोदक तेरा लगो पेशान।
चार वेद के लायक गावे अठारह पुराण ॥
पल पल सुमरूं एक दंत गजानन में चरण तोर मंजे।
सब दुख दूर खोमें ॥
कहे शिव पदरूप गजानन सदां प्रथम पूजन्गे ॥ इत्यादि ॥

'पता चला है कि आगर के महन्त हरिदास ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में मालवी भाषा की कुछ पुस्तकें लिखी थीं, जो अब अप्राप्य हैं। आगर के समीप कानड़ ग्राम के पटवारी श्री मूलचन्द जी (उपनाम 'लालनतनय'), जो आजकल काफी वृद्ध एवं नेत्र-विहीन हो गए हैं। अपनी युवावस्था में नित्य-प्रति पाँच भजन बनाकर गाया करते थे। ऐसे भजनों की संख्या काफी है। आपके भजनों में खड़ी बोली का प्रभाव मालवी रंगत के साथ निखरा है:

थारी काया सोना की अँगूठी बनी,
जीमें पाँचों ही तत्व नगीना जड़्या ॥ टेक ॥
मुझे छोटे धंगासी में तोल दियो
गरभवास कसौटि दिया रगड़ा
विधना सो सुनारन मोड़ो कियो
मुई किस्मत रूप मनुष्य घड़ा ॥
हरिभक्त को पानी अखंड रहे
जग प्रेम प्रेम का तेज चढ़ा।
जोहरी ने परख सद्गुरु से हुई,
परमेश्वर को चित जाय चढ़ा ॥

अनुसार वर्गीकरण किया जा सकता है।

गीत-साहित्य के अन्तर्गत मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार की सामग्री है।

मुक्तक : १. संस्कार-विषयक गीत :—बालक-जन्म के गीत, मुंडन-जनेऊ के गीत, विवाह के गीत (वर-वधू-पक्ष) पूर्वजों के गीत तथा मृत्यु-गीत।

२. धार्मिक गीतः—पंथी-गीत, देवी-देवताओं के गीत और भजन।

३. माहवारी गीतः—ऋतु-गीत तथा वार-त्योहारी गीत।

४. ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक गीत।

५. बच्चों के गीतः—लड़कों के गीत, लड़कियों के गीत तथा क्रम-संगुंफित गीत।

६. विविध गीत :—कौटुम्बिक गीत, गाली (हास्य), ददाली गीत, किलगी-तुर्रा, लावनी तथा अन्य।

प्रबन्ध : १. धार्मिक गीत कथा :—एकादशी, शंकरजी की ब्यावलो कृष्णावतारी कथा, अहिमन कथा आदि।

२. ऐतिहासिक गीत कथा :—ढोढ़, तेजा धोल्या, ढोला-मारू, आदि मंजी (मुंज) पँवार, धन्ना भगत आदि।

गीतों की प्रवृत्ति

उक्त वर्गीकरण में स्त्रियों और पुरुषों दोनों के गीत सम्मिलित किये गए हैं। संस्कार-विषयक, कौटुम्बिक एवं माहवारी गीतों की प्रवृत्ति स्त्रैण है, क्योंकि वे सभी स्त्रियों से सम्बन्धित हैं। लड़कियों के गीतों की प्रवृत्ति भी स्त्रैण ही है। धार्मिक गीतों में पंथी गीत पौरुष-प्रवृत्ति के हैं। ऐतिहासिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक गीतों तथा प्रबन्ध-गीतों में पौरुष का अभाव नहीं है।

पंथी-गीतों ने मानवी पौरुष-प्रवृत्ति को विशेष रूप से प्रभावित किया है। रामदेव, कबीरा, देवीरा, भरथरी रोगन, गोरख आदि गीतों की निर्गुणी भावनाओं ने मानवी पुरुष को कट्टर बनाने, अन्धानुगामी एवं

मालवा ग्रामों का प्रदेश है। प्राकृतिक हरियाली उसे सहज ही प्राप्त हो गई है। इसलिए हरा रंग मालवा की विशेषता है, यद्यपि पीत और नील के संयोग से वह स्वाभावतः व्यक्त हो जाता है। गीतों मे प्रयुक्त 'लीला' शब्द हरे रंग का ही पर्याय है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि झोंपड़ियों और गोबर से लिपे-पुते 'ओवरों' में बसने वाले मालवी-जनों का संयुक्त चित्र बहुत ही कम रंगों में अंकित किया जा सकता है। साँझ होते ही खेत अथवा 'माळ' (जिसका मालवी अर्थ जंगल है) से लौटते हुए ढोरों के समूह और उनके गले में बँधी घण्टियों की ध्वनि तथा अल्हड़ युवकों के लम्बे अलाप प्रकृति से उनके नैकट्य का भान कराते हैं और फिर थोड़े ही समय के पश्चात् शीत-काल में 'अलाव' लगाकर किसान-युवकों के झुण्ड अलग-अलग दीखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो सामाजिक नैकट्य उनके जीवन का स्वभाव हो गया है।

'अलाव' के चहुँओर समाज का यह नैकट्य अगीत-साहित्य की रक्षा में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। पुरुषों में प्रचलित कथाएँ, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ और चुटकुले ऐसे ही समय मनोरंजन के प्रधान अंग होते हैं। मालवी का अगीत-साहित्य वस्तुतः मौलिक गद्य ही है, पर उसमे कहीं-कहीं पद्य की छटाएँ गद्य-गीत अथवा गद्य-पद्य के मिश्रित वैभव को उद्घाटित करती हैं। रातों चलने वाली कथाएँ, स्त्रियों में प्रचलित व्रत-कथाएँ (वार्ता), पारसी (पहेलियाँ), केवात (कहावतें), अवदान आदि मालवी लोक-गद्य की मिली-जुली सामग्री है। लगभग २५५ कहानियों के मध्यभारत-क्षेत्र से संकलित किये जाने का उल्लेख श्री वेरियर एलविन ने किया है। इन कहानियों में अधिकांश कहानियो ने दूर-दूर तक यात्राएँ की हैं। एक बृहद् संग्रह के अभाव में यह निश्चित करना कठिन है कि मालवी कहानियों का एशिया की कहानियों में क्या स्थान है।

'किलगी-तुर्रा'

'किलगी-तुर्रा' की एक परम्परा मालवा और निमाड़ में 'माच' की भाँति ही विद्यमान है। इस अखाड़े के लोग कुछ तो परम्परा से प्राप्त

मौलिक और कुछ नवीन सामग्री के आधार पर अपनी वाणी का कौशल दिखाया करते हैं। सम्भवतः रीति-काल के प्रारम्भ होते ही इसका प्रवेश लोक-मानस में हो गया। 'किलगी' एक ओर से गाई जाती है और 'तुर्रा' दूसरी ओर से। इस प्रकार दो दलों का बुद्धि-परक काव्य-कौशल छन्दों के बन्दों में संगीत के माध्यम से प्रकट होता है।

'किलगी-तुर्रा' के उद्भव के सम्बन्ध में एक किंवदन्ति निमाड़ पर्यवेक्षण-दल (मालव लोक-साहित्य-परिषद् उज्जैन) को ग्राम मोरगड़ी (निमाड़) में सुनने को मिली। तुकनगीर गुसाईं और शाहअली मुसलमान ने एक दिन विचार किया कि दुनिया में कुछ ऐसा किया जाय कि नाम और यश प्राप्त हो। तुकनगीर ने शंकर का बाना धारण किया और 'तुर्रा' का भगवा झण्डा खड़ा किया। 'किलगी' का छींट वाला झण्डा शाहअली ने उठाया। मध्यस्थ के रूप में 'टुण्डा' का प्रवेश भी हुआ। 'तुर्रा' पक्ष शिव का आराधक है, जिसका विश्वास है कि शिव आदि पुरुष है और किलगी (जो कि शक्ति है) पार्वती हैं। 'किलगी' पक्ष की मान्यता भिन्न है। उसका कथन है कि 'किलगी' आदि-शक्ति है। उसीसे शिव उत्पन्न हुए हैं। अतः शिव शक्ति का पुत्र है।

उक्त दोनों मान्यताओं को लेकर दोनों पक्षों में द्वन्द्व-संघर्ष होता है। दूर-दूर से गाने वाले निमन्त्रित किये जाते हैं, जो अपनी पुश्तैनी पोथियों को लेकर टोलियाँ बनाकर आते हैं।

'किलगी तुर्रा' का रिवाज पिछले २५ वर्षों से धीरे-धीरे उठने लगा है। कहते हैं कि एक-दूसरे पक्ष को नत करने के लिए तान्त्रिक प्रयोग का प्रवेश इसमें प्रारम्भ हुआ। ऐसे तान्त्रिक पदों को 'जंजीरा' कहा जाता है।

निमाड़ के घोली ग्राम में किलगी-तुर्रा की अनेक हस्त-लिखित पोथियाँ भारतीय महाराज के शिष्य के पास सुरक्षित हैं। कहते हैं कि महारानी अहल्याबाई के समय 'किलगी-तुर्रा' के गायकों को काफी प्रोत्साहन मिला था।

'किलगी-तुर्रा' की होड़ में जैसे दलीलों का महत्त्व है वैसे ही छन्दों के स्वरूप को निभाने का भी कौशल विद्यमान है। यदि एक दल ने कोई

प्रसंग किसी विशेष छन्द में कहा तो सामने वाले पक्ष को उस छन्द की अन्तिम पंक्ति लेकर उसी छन्द में उत्तर देना पड़ता है। अन्यथा 'विकल्त' समझी जाती है।

'किलगी-तुर्रा' में कई प्रकार की रंगतें होती हैं। छोटी रंगत, बड़ी रंगत, लँगड़ी रंगत, आड़ी रंगत, खड़ी रंगत आदि रंगतें गाने के विशेष ढंग हैं। दुवाबी, अधर-रकारी, तिवारी, चौतारी, दुअंग, मनचली, झड़, झड़ती, बहर-तबीर, सनत, दूहा, सेर आदि छान्दिक प्रकारों का प्रचलन दोनों पक्षों में पाया जाता है।

'अधर रकारी' तो टेढ़ी परीक्षा है। इसके छन्द में एक भी अक्षर ओष्ठ्य नहीं होता है।

मोरगडी (निमाड) के हीरामुकाती, अकबर खाँ, आगर (मालवा) के 'किलगी' अखाड़े के भेरू, मोती, मुगलखाँ और चेतराम तथा 'तुर्रा' अखाड़े के बलदेव उस्ताद की रचनाएँ लोगों में बहुत प्रचलित हैं। कदाचित् इस साहित्य का विकास मुसलमानी शासन-काल में हुआ है। पिछले तीन-चार सौ वर्षों की लोक-भावनाओं को जानने के लिए यह साहित्य उपयोगी है। इसका अधिकाश साहित्य उच्चकोटि का है।

फुटकर प्रयत्न

मालवी लोक-साहित्य-संकलन का जो कार्य अब तक हुआ है वह सन्तोषजनक नहीं है। इस दिशा में सर्व प्रथम ध्यान देने वाले श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव हैं। श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' ने भी मालवी-सम्बन्धी लेख लिखकर बहुत पहले (सन् १९३३ में) इस दिशा में प्रेरणा दी है। पण्डित प्रभागचन्द शर्मा (खंडवा) ने 'मालवी लोक-गीतों में नारी'[१] तथा पण्डित गोपीवल्लभ उपाध्याय ने 'साधना' में प्रकाशित अपनी कुछ रचनाओं द्वारा (१९४३) गीत-संकलन के प्रति रुचि पैदा करने में योग दिया। श्री बी० आर० प्रधान ने बम्बई-विश्वविद्यालय के समाज-शास्त्र-विभाग के लिए सन् १९३९ और ४२ के बीच भूतपूर्व धार रियासत से कुछ मालवी गीत एकत्र

१. 'हंस', सितम्बर १९४० ।

इस बीच हिन्दी-प्रेमियों में तीन-चार दर्जन मालवी गीतों-सम्बन्धी लेख लिखे, जिनसे इस दिशा में काफी प्रेरणा का संचार हुआ। 'मालवी लोक-गीत' के नाम से हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर ने सन् १९५० में कुछ लेखों का संग्रह भी प्रकाशित किया था, जिसमें गीतों पर विषयानुसार विवेचन किया गया है। उज्जैन के श्री सूरजप्रसाद सेठी, श्री सूर्यनारायण व्यास तथा नागदा के श्री हरीश निगम ने मालवी लोकोक्तियों का संग्रह किया है, जिनकी संख्या डेढ़ हजार से कम नहीं है। गीत-संकलन-कर्ताओं में श्री चिन्तामणि उपाध्याय, श्री अनूप, श्री बसन्तीलाल बम्ब, श्री स्वरूप-कुमार, मालिक श्री नेमिचन्द जैन के नाम फुटकर गीत-संग्राहकों की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

आजकल लोक-कथाओं के संग्रह की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। सन् १९५२ के आरम्भ में 'मालव-लोक-साहित्य-परिषद्', उज्जैन की स्थापना हुई, जो इस दिशा में विशेष गतिशील है। इसका कुछ श्रेय उज्जैन के प्रतिभा-निकेतन को भी है। निमाड़ में (जो कि मालवी का ही उपक्षेत्र है) 'निमाड़ी लोक-साहित्य परिषद्' की स्थापना हाल ही में की गई है, जिसको प्रेरणा मालव-लोक-साहित्य-परिषद् द्वारा किये गए निमाड़-पर्यवेक्षण से मिली है।

लोक-गीतों का संगीत पक्ष

मालव-प्रदेश के लोक-गीतों का संगीत पक्ष अब तक अध्ययन का आधार नहीं बना था। किन्तु पिछले दो वर्षों से भारत-प्रसिद्ध संगीतज्ञ

श्री कुमार गन्धर्व ने मालवी गीतों की धुनों का अध्ययन इस आधार पर करना आरम्भ किया है कि वर्तमान हिन्दुस्तानी-पद्धति की राग-रागिनियों के स्वरों के मूल रूप लोक-संगीत में ही निहित हैं। लोक-धुनों को स्पष्ट करने से एवं उनके गहरे अध्ययन द्वारा अनेक नये रागों का निर्माण सहज ही में किया जा सकता है। श्री कुमार के इस अनुसन्धान एवं भारतीय संगीत के विकास-पथ में उनकी पत्नी श्रीमती भानुमती गन्धर्व का भी पूरा-पूरा सहयोग है। अपने इस प्रयास में श्री कुमार ने लगभग २०० धुनों का संकलन करके ५० नये रागों का निर्माण किया है। 'नेशनल एकेडेमी व डान्स एण्ड म्युज़िक' द्वारा इस दिशा में उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान जाने की सम्भावना है।

आधुनिक मालवा : गद्य एवं पद्य

गद्य

मालवी के आधुनिक गद्य का आरम्भ बदनावर (जिला धार) निवासी श्री पन्नालाल 'नायब' लिखित 'मास्टर साब की अनोखी सूझ' नामक प्रहसन से होता है। यह पुस्तिका लगभग ३६ वर्ष पूर्व लिखी गई थी, जिसका उद्देश्य ग्रामीण शिक्षकों की अभाव-ग्रस्त स्थिति का परिचय देते हुए हास्य की झांकी प्रस्तुत करना है। प्रहसन के बीच में स्थान-स्थान पर पद्यबद्ध पंक्तियाँ पारसी थियेट्रिकल कम्पनी के नाटकों की याद दिलाती हैं। श्री 'नायब' ने 'भारत में यू और फू' नामक दूसरा प्रहसन नाटक वस्तुओं के विरोध में, उक्त पुस्तिका के दस वर्ष पश्चात् लिखा; किन्तु उसका गद्य मालवी में नहीं है। मालवी के आधुनिक गद्य का आरम्भ इस प्रकार हास्य रूप में ही हमारे सामने आ सका है। इसके कुछ कारण अवश्य हैं। गद्य-लेखन की प्रवृत्ति तो पहले से ही हमारे में कम रही है, फिर मालवा में इसका क्रम (जो पहले कभी रहा होगा) आधुनिक गद्य से न जुड़ पाया। अतः उपलब्ध प्रमाणों के अभाव में हमें इसी निष्कर्ष से सन्तोष कर लेना चाहिए।

संवत् २००४ में हिन्दी रत्न मन्दिर, बम्बई से प्रकाशित 'कालीदास' नाटक मालवी का एक सफल प्रयोग सिद्ध हुआ। यह सम्पूर्ण नाटक डॉ० नारायण विष्णु जोशी द्वारा करने कपूर की बदरान कोठी की सहायता से

लिया गया है और दो-तीन वर्ष पूर्व बम्बई में खेला भी गया है। नाटक की कथावस्तु भारत में जागीरदारी प्रथा के दोषों को उभारते हुए जिन वर्गों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने में परिणत हुई है। जागीर के अधिकारियों द्वारा शोषण और अत्याचार से नाना पीड़ित किये जाते हैं। एक ओर ये दोनों पात्र हैं और दूसरी ओर जागीरदार का दल। कैसा भी झगड़ा खड़ा करके जुल्म करना उनका साधारण काम है। जागीरदार के आदमी मुन्शीजी, कामदार और महाराज सब अपना काम बड़ी मुस्तैदी से करते हैं।

इन सबके ऊपर है जागीरदार, जो इन लोगों के जरिए लोगों का खून चूसकर विलास-रंग में मस्त रहता है। उसे इसकी परवाह नहीं कि कौन मरता है और कौन जीता है।

अन्य पात्र कथा के विकास में सहायता देते हैं। था की सिपाही और रामू की मौत एक नया वातावरण पैदा करके नाटक में गति उत्पन्न करते हैं। सुखलाल, फकीर और मीरवा नौकर जागीरदार के अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाकर उसका और अन्य कर्मचारियों का भण्डा फोड़ने के लिए पुलिस और अधिकारियों से मदद लेते हैं। ये भी दिन को रात बनाने से नहीं चूकते। परन्तु जिस बात को गाँव का एक-एक आदमी जानता था और जो जागीरदार के अत्याचारों से पीड़ित था, इस सचाई के गवाह के रूप में जब प्रस्तुत दिखाई दिया तो सामूहिक शक्ति के सम्मुख किसी की भी न चल पाई और असली खूनी पकड़ लिए गए।

सम्पूर्ण नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक स्वाभाविकता व्याप्त है। कोई ऐसा स्थल नहीं है जहाँ लेखक की कलम बहकी हो। जागीरदारी-प्रथा के विरोध में लम्बे-लम्बे भाषण इसमें नहीं हैं। श्री अमृतराय के शब्दों में कहें तो 'तकरीरों के भयानक रोग' से 'जागीरदार' बिलकुल मुक्त है। असत्य को प्रतिबिम्बित करने की कोशिश लेखक ने नहीं की है। सुखलाल और फकीर जागीरदार के अत्याचार के विरोध में लेक्चर नहीं देते; बल्कि बात-चीत के दौरान में अपने हृदय के फफोले फोड़ लेते हैं। फकीर एक ऐसा पात्र है, जो मुसलमान होते हुए भी हिन्दू और मुसलमान में भेद नहीं

स्थान प्रयुक्त करके स्वाभाविकता की खूब रक्षा की है।

भावुकता के लिए 'जागीरदार' में गुंजाइश नहीं। कोई भी ऐसा पात्र नाटक में नहीं जो व्यर्थ भावुकता का राग अलापता हो या नाटक में प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लम्बे-लम्बे वाक्यों की झड़ी लगाता हो। कम से-कम 'जागीरदार' में अनुपयुक्त संवाद और व्यर्थ बकवास नहीं है।

महाराव एक ऐसा पात्र है जो नाटक में हास्य का पुट देता है। लेकिन हास्य अतिशयोक्ति और अस्वाभाविक ढंग से उत्पन्न नहीं किया गया है। स्वयं महाराज की खुशामदपरस्ती से भरी हुई बातचीत का लहजा, अपने पुरखा की प्रशंसा में प्रमाणहीन किस्से, संस्कृत और हिन्दी की कविताओं की मनगढ़न्त पंक्तियाँ और अवसर विशेष के लिए उपयुक्त उदाहरणों की भरमार खुद-ब-खुद हास्य उत्पन्न करते हैं।

नाटक का कथानक चित्रवत् खुलता जाता है। ऐसा कोई स्थल नहीं जहाँ पाठक उलझ जाता हो। एक के पश्चात् दूसरा दृश्य व्यवस्थित रूप से सामने आता जाता है। कहीं कोई कमी नहीं। लेखक ने दार्शनिक की भाँति अपने को प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि इसके ठीक विपरीत वह एक 'मैकेनिक' की तरह प्रस्तुत हुआ है।

जागीरदार का अन्त सुख में हुआ। घटनाएँ सभी इस ढंग से रखी और गुंथी हैं कि इसमें अस्वाभाविकता का लेश-मात्र भी आभास नहीं होता।

'जागीरदार' के सम्बन्ध में इतना लिखना इसलिए अनिवार्य प्रतीत हुआ कि मालवी-गद्य के विकास में यह नाटक अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

मराठी भाषी लेखक के द्वारा 'जागीरदार'-जैसा महत्वपूर्ण प्रयोग गौरव का विषय है। इसी प्रकार श्री श्याम और कुंवर प्रयोग भी नागराज सिंह जोशी द्वारा किये गए हैं, जिनमें छोटे प्रहसन और कुछ कविताएँ हैं।

आधुनिक मालवी-गद्य में नाटकों का यह क्रम निरन्तर बना नहीं रहा। बीच-बीच में यहाँ-वहाँ ही ऐसे प्रयोग पत्रों में दीख पड़ते थे। पिछले वर्ष पं० सूर्यनारायण व्यास ने कुछ मालवी-प्रहसन तैयार किये थे। जिनको अब एक संग्रह-रूप में प्रकाशित कराया जा रहा है।

श्रीनिवास जोशी-कृत 'वाह रे पट्ठा भारी करी' उज्जैन के एक पण्डे की कहानी है, जो इन दिनों अत्यन्त लोकप्रिय हुई। 'वीणा' मासिक में यह क्रमशः प्रकाशित होती रही। यद्यपि यह अभी पूर्ण नहीं हुई है, तथापि उसका थोड़ा ही अंश शेष रहा है। घटना इस प्रकार है कि एक अंग्रेज महिला-आर्टिस्ट भ्रमण करते हुए उज्जैन पहुँचती है। स्थान-स्थान पर उसने अपनी तूलिका से कई प्रकार के 'मॉडल' बनाये थे। उज्जैन में उ एक पण्डे का स्वरूप, डील-डौल और गेट-अप बहुत पसन्द आता है। व महाराज गुरु गोटूलाल से, जैसा कि उनका नाम था, प्रार्थना करती है कि वह उसके ठहरने के स्थान पर चलकर कुछ समय के लिए 'सिटिंग' दे ताकि वह चित्र बना सके, इसके एवज़ में उसे कुछ रकम दी जायगी। गु तो तैयार थे। नेकी और पूछ-पूछ। 'महाकाल महाराज की किरपा है ऐसा जिजमान रोज थोड़ा ही मिले हे!'

चित्र तैयार होता है एक बड़ी चित्र-प्रदर्शिनी में उस महिला को इस 'माडल' पर पुरस्कार प्राप्त होता है। अपनी सफलता से प्रसन्न होकर महिला

का अनुवाद) और श्री चिन्तामणि उपाध्याय (कुछ स्वतन्त्र कहानियाँ) को भी प्राप्त है।[1]

पत्र-साहित्य में मालवी के वर्तमान गद्य का स्वाभाविक स्वरूप निखरा है। पत्रों का सिलसिला हमें दूर तक प्राप्त होता है। यदि पिछली शताब्दी से लगाकर अभी तक के कुछ पत्रों का संकलन किया जाय तो हमें गद्य के परिवर्तित रूप का ज्ञान सहज हो सकता है। मध्यवर्गीय मालवीय तो आज भी जहाँ मालवी का प्रयोग आवश्यक है वहाँ निस्संकोच उसमें लिखा-पढ़ी करते हैं। शिक्षितों का इस ओर जब से ध्यान गया है, विवाह की पत्रिकाओं में कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रणों में, तथा ग्राम के कार्य-क्रमों आदि में स्थानीय भाषा के माध्यम का फैशन-सा चल पड़ा है।

अन्त में मालवी के आधुनिक गद्य के सम्बन्ध में हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि वह पुष्ट नहीं है। नवोत्थान का वाहक साहित्य पहले पद्य में ही अधिक परिपुष्ट होता है। यह मालवी में भी दीख पड़ता है।

पद्य

पद्य की दृष्टि से मालवी का आधुनिक साहित्य काफी समृद्ध हो रहा है। श्री सुखराम द्वारा लिखित 'ललितादेवी का विवाह' और 'रुक्मिणी मंगल' (निमाडी) तथा आगर के श्री मुकुन्दराम नानूराम एवं शंकरलालजी की लावनियों से आरम्भ होकर नन्दकिशोरजी की हास्यरसी पुस्तकें 'पंडत पचीसी' एवं 'खटमल बत्तीसी' से होते हुए 'युगल विनोद' (युगलकिशोर, शाजापुर) एवं बालाराम पटवारी (नागदा) की 'किरसानी कीचड' तक की पीढी का पद्य सहज लेखन की प्रवृत्ति का द्योतक है। इस सिलसिले में आधुनिक गद्य के आरम्भकर्ता पन्नालाल नायब का स्थान भी है। उनकी कविता में गद्य की भाँति ही ग्रामीण हास्य की छटा मिलती है। 'गोरा' नामक कविता

१. सन् १९२८ के लगभग श्री दीनानाथ व्यास ने भी मालवी-कहानियाँ लिखने का प्रयत्न किया था। 'मालवी खटला' नामक उनकी कहानी उन्हीं दिनों 'जयाजी प्रताप' (लश्कर) में प्रकाशित भी हुई थी।

की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

> गोरा था जद होरा था, सहर म्हाने मळती थी।
> मुकता मोता जात न्यात में, धेल्या-धेल्या गळती थी॥
> दूध भाव में घी मळतो थो, साळ घराँ में सळती थी।
> ढोला, ढब्बी, मक्या, धक्या, जान भिखारी पळती थी॥
> बना खरच छाती चलती थी, हात हथेली कळती थी।
> अब कई धरतो पड़ी बाजरणी, पेर्लों केसी फलती थी॥

पुरातन में 'सुख का धाम' देखकर आधुनिक के प्रति कुढकर उसका मज़ाक उड़ाने की प्रवृत्ति अभी तक कुछ वृद्ध कवियों में मौजूद है। 'नायब' जी के अतिरिक्त मालवी के दूसरे कवियों में इस दृष्टि से उज्जैन के शालिग्राम जी मास्टर, बालाराम पटवारी और युगलकिशोरजी के नाम लिये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युगलकिशोरजी को छोड़कर उक्त सभी कवियों की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। छन्द का प्रवाह उत्तम और भावों की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। युगलकिशोरजी की कविताओं पर राजनीति ने जो प्रभाव डाला है उसके परिणाम स्वरूप भावों का स्तर गिर गया है। प्रोपेगेंडा-प्रवृत्ति का रूप हमें उनके राजनीति से प्रभावित कविताओं में मिलता है। 'युगल विनोद' की कविताएँ, जो राजनीति से परे हैं, अवश्य प्रशंसनीय हैं। 'भावरणी', 'टसेरो', 'दीवाली' 'तुलसीदास' आदि कविताएँ सुन्दर हैं।

मालवी-पद्य में नये उन्मेष से नवीन प्रवृत्ति को लाने का श्रेय साँवेर (इन्दौर) निवासी श्री आनन्दराव दुबे को है।

कविता के रूढ़िगत छन्द से ऊपर उठकर श्री दुबे ने पहली बार मालवी-गीतों को अपनी ऊँची आवाज में गाकर प्रेरणा का अतुलित सचार किया। स्वर दुबेजी में प्रेरणा गाँव के वातावरण, कुटुम्बीय आत्मीयता और लोगों के सम्पर्क से आई। छोटे-छोटे गीतों के अतिरिक्त वर्णन-प्रधान कविता का श्रीगणेश जिस ढंग से आपने किया उसका प्रभाव मालवी के कुछ कवियों पर ऐसा पड़ा है कि वो शीघ्र ही छूटने वाला नहीं है। मालवी के र र से

का अनुवाद) और श्री चिन्तामणि उपाध्याय (कुछ स्वतन्त्र कहानियाँ) को भी प्राप्त है।[1]

पत्र-साहित्य में मालवी के वर्तमान गद्य का स्वाभाविक स्वरूप निखरा है। पत्रों का सिलसिला हमें दूर तक प्राप्त होता है। यदि पिछली शताब्दी से लगाकर अभी तक के कुछ पत्रों का संकलन किया जाय तो हमें गद्य के परिवर्तित रूप का ज्ञान सहज हो सकता है। मध्यवर्गीय मालवीय तो आज भी जहाँ मालवी का प्रयोग आवश्यक है वहाँ निस्संकोच उसमें लिखा-पढ़ी करते हैं। शिक्षितों का इस ओर जब से ध्यान गया है, विवाह की पत्रिकाओं में कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रणों में, तथा ग्राम के कार्य-क्रमों आदि में स्थानीय भाषा के माध्यम का फैशन-सा चल पड़ा है।

अन्त में मालवी के आधुनिक गद्य के सम्बन्ध में हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि वह पुष्ट नहीं है। नवोत्थान का वाहक साहित्य पहले पद्य में ही अधिक परिपुष्ट होता है। यह मालवी में भी दीख पड़ता है।

पद्य

पद्य की दृष्टि से मालवी का आधुनिक साहित्य काफी समृद्ध हो रहा है। श्री सुखराम द्वारा लिखित 'ललितादेवी का विवाह' और 'रुक्मिणी मंगल' (निमाड़ी) तथा आगर के श्री मुकुन्दराम नानूराम एवं शंकरलालजी की लावनियों से आरम्भ होकर नन्दकिशोरजी की हास्यरसी पुस्तकें 'पंडत पचीसी' एवं 'खटमल बत्तीसी' से होते हुए 'युगल विनोद' (युगलकिशोर, शाजापुर) एवं बालाराम पटवारी (नागदा) की 'किरसानी कीचड़' तक की पीढ़ी का पद्य सहज लेखन की प्रवृति का द्योतक है। इस सिलसिले में आधुनिक गद्य के आरम्भकर्ता पन्नालाल नायब का स्थान भी है। उनकी कविता में गद्य की भाँति ही ग्रामीण हास्य की छटा मिलती है। 'गोरा' नामक कविता

1. सन् १९२८ के लगभग श्री दीनानाथ व्यास ने भी मालवी-कहानियाँ लिखने का प्रयत्न किया था। 'मालवी खटला' नामक उनकी कहानी उन्हीं दिनों 'जयाजी प्रताप' (ग्वालियर) में प्रकाशित हुई थी।

की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

> गोरा था जद होरा था, मक्कर म्हाने मळती थी।
> तुकना नोवा जात न्यात मे, पेल्या-पेल्या गळती थी॥
> दूध भाव में घी मळतो थो, साळ घराँ मे सळती थी।
> डांळा, डग्गो, मक्या, धवया, जान भिखारी पळती थी॥
> बना खरच खाती चळती थी, हात हथेळी कळती थी।
> अब कई धरती पड़ी वाजणी, पेलाँ केसी फळती थी॥

पुरातन में 'सुख का धाम' देखकर आधुनिक के प्रति कुढ़कर उसका मजाक उड़ाने की प्रवृत्ति अभी तक कुछ वृद्ध कवियों में मौजूद है। 'नायब' जी के अतिरिक्त मालवी के दूसरे कवियों में इस दृष्टि से उज्जैन के शालिग्राम जी मास्टर, बनाराम पटवारी और युगलकिशोरजी के नाम लिये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युगलकिशोरजी को छोड़कर उक्त सभी कवियों की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। छन्द का प्रवाह उत्तम और भावों की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। युगलकिशोरजी की कविताओं पर राजनीति ने जो प्रभाव डाला है उसके परिणाम स्वरूप भावों का स्तर गिर गया है। प्रोपेगेण्डा-प्रवृत्ति का रूप हमें उनके राजनीति से प्रभावित कविताओं में मिलता है। 'युगल विनोद' की कविताएँ, जो राजनीति से परे हैं, अवश्य प्रशंसनीय हैं। 'भावणी', 'दसेरो', 'दीवाली' 'तुलसीदास' आदि कविताएँ सुन्दर हैं।

मालवी-पद्य में नये उन्मेष से नवीन प्रवृत्ति को लाने का श्रेय साँवेर (इन्दौर) निवासी श्री आनन्दराव दुबे को है।

कविता के रूढ़िगत छन्द से ऊपर उठकर श्री दुबे ने पहली बार मालवी-गीतों को अपनी ऊँची आवाज में गाकर प्रेरणा का अतुलित सञ्चार किया। स्वयं दुबेजी में प्रेरणा गाँव के वातावरण, कुटुम्बीय आत्मीयता और लोगों के सम्पर्क से आई। छोटे-छोटे गीतों के अतिरिक्त वर्णन-प्रधान कविता का श्रीगणेश जिस ढंग से आपने किया उसका प्रभाव मालवी के कुछ कवियों पर ऐसा पड़ा है कि जो शीघ्र ही छूटने वाला नहीं है। मालवी के क्षेत्र में

की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

गोरा था अर होरा था, सक्कर म्हाने मळती थी।
मुक्ता नोता जात न्यात में, घेल्या-घेल्या गळती थी ॥
दूध भाव में घी मळतो थो, माळ घरों मे सळती थी।
होळा, डभ्भो, मक्या, धक्या, जान भिखारी पळती थी ॥
वना खरच छातों पळती थी, हात हथेळी कळती थी।
अब कई धरती पड़ी वाजणी, पेलाँ केसी फळती थी ॥

पुरातन में 'सुख का धाम' देखकर आधुनिक के प्रति कुढ़कर उसका मज़ाक उड़ाने की प्रवृत्ति अभी तक कुछ वृद्ध कवियों में मौजूद है। 'नायब' जी के अतिरिक्त मालवी के दूसरे कवियों में इस दृष्टि से उज्जैन के शालिग्राम जी मास्टर, बालाराम पटवारी और युगलकिशोरजी के नाम लिये जा सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युगलकिशोरजी को छोड़कर उक्त सभी कवियों की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। छन्द का प्रवाह उत्तम और भावों की अभिव्यक्ति प्रभावशाली है। युगलकिशोरजी की कविताओं पर राजनीति ने जो प्रभाव डाला है उसके परिणाम स्वरूप भावों का स्तर गिर गया है। प्रोपेगण्डा-प्रवृत्ति का रूप हमें उनके राजनीति से प्रभावित कविताओं में मिलता है। 'युगल विनोद' की कविताएँ, जो राजनीति से परे हैं, अवश्य प्रशंसनीय हैं। 'भावणी', 'दसेरो', 'दीवाली' 'तुलसीदास' आदि कविताएँ सुन्दर हैं।

मालवी-पद्य में नये उन्मेष से नवीन प्रवृत्ति को लाने का श्रेय सौंवेर (इन्दौर) निवासी श्री आनन्दराव दुबे को है।

कविता के रूढ़िगत छन्द से ऊपर उठकर श्री दुबे ने पहली बार मालवी-गीतों को अपनी ऊँची आवाज़ में गाकर प्रेरणा का अतुलित संचार किया। स्वर दुबेजी में प्रेरणा गाँव के वातावरण, कुटुम्बीय आत्मीयता और लोगों के सम्पर्क से आई। छोटे-छोटे गीतों के अतिरिक्त वर्णन-प्रधान कविता का श्रीगणेश जिस ढंग से आपने किया उसका प्रभाव मालवी के कुछ कवियों पर ऐसा पड़ा है कि वो शीघ्र ही छूटने वाला नहीं है। मालवी के र म

अरे बापरे मारया-मारया ।
देख-देख यई बचा-बचा यई
अरे राम रे पड़या-पड़या ।
म्हारी गलती मी हे यई वो, हूँ जाण्यो यूँ पछतायो ।
की की गलती कितरी गलती, हूँ जाणूँ की वा जाणे ॥'

दुबेजी की कविताओं से पहले-पहल मालवी मे व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग का आरम्भ होता है । गाँव के प्रतिनिधि चरित्र उनके नाम-मात्र से पहचाने जाते हैं, जिनके सम्बन्ध मे हमारे मन मे पहले से ही पूर्वग्रह होते हैं। ऐसे पूर्वग्रहों को जाग्रत करने वाले नामो को कविता मे प्रयुक्त करने मात्र से ही सुनने वाले समुदाय के मन मे विषय के प्रति नैकट्य का भाव उत्पन्न हो जाता है। नामो की यह परम्परा श्री दुबे के समकालीन कुछ कवियो ने अपनाई भी है ।

श्री मदनमोहन व्यास (टोंक) आनन्दराव दुबे की परम्परा में स्थान पाते हैं। 'म्हारो नाम बाळ्या हे', 'मालवा की नानी', 'मालवा की जातरा' आदि कविताएँ लोगो के मुँह पर हैं । यहाँ तक कि जिस प्रकार श्री दुबे 'रामजा रईस्या ने रेल जाती री' से पहचाने जाते हैं उसी प्रकार 'म्हारो नाम बाळो हे' श्री मदन व्यास की पहचान दिलाने वाली रचना है । इन कवियों ने अपनी वर्णन-प्रधान पद्धति से मालवा के जीवन के सीधे-सादे चित्र प्रस्तुत किये हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की प्रवृति श्री मदन व्यास ने भी अपनाई । उनकी कविता मे यद्यपि नामो की भरमार नहीं होती पर चित्रों को प्रस्तुत करने की बँधी-बँधाई शब्द-योजना अवश्य होती है । दुबे-जैसी मस्ती व्यास मे नहीं है । व्यास केवल कविता के छन्द और ढंग मे ही दुबे के अनुकरणकर्ता हैं । विषय-वस्तु की दृष्टि से जीवन की कटुता और दैन्य का चित्र व्यास ने हृदय से किया है । दुबे मे आन्तरिक करुणा है—अपने व्यापक स्वरूप मे । व्यास मे यही करुणा गाँवों के निम्न वर्ग के प्रति अधिक दर्दपूर्ण है । 'म्हारो नाम बाळ्यो हे' शीर्षक कविता मे गाँव के ढ़ढोर चराने वाले बालक की जीवन-गाथा है । 'मालवा की नानी' एक

कां बाजे मादल मादल ।
ढूंढ-ढूंढ कहूं ढला-ढला कहूं
कां राम रे पड़ता-पड़ता ।
म्हारो गलवो मा है कहूं थो. हूँ जावा यूँ पहुनावो ।
थो का गलवो किसो गलतो. हूँ जावूँ थो बा आवे ॥'

दुबे जी की कविताओं में पहले-पहल मालवी में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग का आरम्भ होता है । गाँव के प्रतिनिधि व्यक्ति उनके नाम-मात्र से पहचाने जाते हैं, जिनके सम्बन्ध में हमारे मन में पहले से ही पूर्वग्रह होते हैं । इन पूर्वग्रहों को जाग्रत करने वाले नामों को कविता में प्रयुक्त करने मात्र से ही सुनने वाले श्रोता के मन में विषय के प्रति तादात्म्य का भाव उत्पन्न हो जाता है । नामों की यह परम्परा श्री दुबे के समकालीन कुछ कवियों ने अपनाई भी है ।

श्री मदनमोहन व्यास (टांक) आनन्दराव दुबे की परम्परा में स्थान पाते हैं । 'म्हारो नाम बावचो है', 'मालवा की नानी', 'मालवा की जातरा' आदि कविताएँ लोगों के मुँह पर हैं । यहाँ तक कि जिस प्रकार श्री दुबे 'रामजा हईया ने रेख जातो रो' से पहचाने जाते हैं उसी प्रकार 'म्हारो नाम बावो है' श्री मदन व्यास की पहचान दिलाने वाली रचना है । इन कवियों ने अपनी वर्णन-प्रधान पद्धति से मालवा के जीवन के सीधे-सादे चित्र प्रस्तुत किये हैं । व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की प्रवृत्ति श्री मदन व्यास ने भी अपनाई । उनकी कविता में यद्यपि नामों की भरमार नहीं होती पर चित्रों को प्रस्तुत करने की बँधी-बँधाई शब्द-योजना अवश्य होती है । दुबे-जैसी मस्ती व्यास में नहीं है । व्यास केवल कविता के छन्द और ढंग में ही दुबे के अनुकरणकर्ता हैं । विषय-वस्तु की दृष्टि से जीवन की कटुता और दैन्य का चित्र व्यास ने हृदय से किया है । दुबे में आन्तरिक करुणा है—अपने व्यापक स्वरूप में । व्यास में यही करुणा गाँवों के निम्न वर्ग के प्रति अधिक शक्तिपूर्ण है । 'म्हारो नाम बावचो है' शीर्षक कविता में गाँव के एक ढोर चराने वाले बालक की जीवन-गाथा है । 'मालवा की नानी' एक

'धरती मा ने धान उगायो।
सब मिली ने त्यायो खिलायो, रमिया।
× × ×
गऊँ ने कपास चणा भी आया
चलो नाचो गाओ मौज मनाओ, रमिया।'

इन कवियों की श्रेणी में गिरवरसिंह 'भँवर' नई शैली के प्रणेता हैं, जो अपना स्वतन्त्र ढंग लेकर अवतरित हुए। राजस्थानी, मालवी और निमाड़ी के रस को उन्होंने इस तरह घोला है कि सभी विभेद उनके लिए कठिन नहीं जान पड़ते। लोक-गीत-शैली का आरम्भ हम उन्हीं से स्वीकार करते हैं। मदन व्यास पर जो प्रभाव है वह वस्तुतः उन्हीं की रचनाओं से आया प्रतीत होता है। गुजराती गरबियों की धुनों पर 'चौमासा' और अन्य गेय कविताएँ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं, जिनके लिए 'भँवर' प्रसिद्ध हैं। 'भँवर' में रंग का प्रभाव, और सूक्ष्म भावों की पकड़ खूब है। भाषा पर यथेष्ट अधिकार भँवर के लिए काव्य में वरदान सिद्ध हुआ है। प्रकृति का चित्रण उनमें प्रतिबिम्बात्मक है। नारी के हृदय की विरह-व्यथा प्रकृति के रूप में ही उद्दीप्त हुई है। 'पियाजी मानो म्हारी बात' कविता की निम्न पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं :

'हरो-हरो यो खेत हमारो, रात जिकमें चंदा आवे,
और डागला पे बैठी ने रोज चाँदणी गावा गावे,
मोर मोरनी और पपइया चपया ओटा से खेले,
थारे तमासा मन को राखी कद से दो दुखड़ो झेले।'

'भँवर का' 'केसरिया फाग' नामक कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'भँवर' की अनुरूपता लेकर प्रकट होने वाले नरेन्द्र कवियों के [illegible] भिन्न है। उनकी 'टगड़ी बदल आपणी' कविता 'भँवर' की 'चलो मत बना दे' की तरह ही मालवा में प्रचलित है।

इसके पश्चात् श्रीनाथ और पश्चात् उत्पल 'भँवर' के बाद मालव के क्षेत्र में आए। [illegible] उत्साह की गति शिथिल रही और [illegible] उत्पन्न करने की

केवल प्रतिगामी प्रवृत्तियों का पनपना है। यह बात यदि हम स्वस्थ दृष्टि-कोण से समझने का प्रयत्न करें तो निश्चय ही हमें इसमें हिन्दी के उत्थान के साथ-साथ अपने राष्ट्रीय जीवन के सांस्कृतिक विकास की योजना भी निहित ज्ञात होगी। हिन्दी का स्वरूप ही विभिन्न प्रान्तीय बोलियों और भाषाओं के योग से स्वाभाविक तौर पर बनी हुई भाषा है। हिन्दी ने अनेक प्रकार के शब्दों और अभिव्यक्तियों को अपने में आत्मसात् किया है। क्या हम इस सहज आदान-प्रदान के क्रम को रोक दें? यदि हमने ऐसा करने का प्रयत्न किया तो वह दूध, जो मातृ-भाषाओं (बोलियों) से हिन्दी में पहुँच रहा है, बन्द हो जायगा और उसके द्वारा स्पन्दित हिन्दी का मुखरित रूप कुम्हला जायगा। मातृ-भाषाओं या जनपदों की बोलियों में उभरती हुई चेतना हिन्दी के विरुद्ध किसी भाँति भी नहीं है। भाषाओं के विकास से जनपदीय चेतना का विकास सम्बद्ध है। इस विकास से राष्ट्रीयता की समुन्नत भावना और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को बढ़ने का अवसर मिलता है। इस प्रकार यदि जनपदों में यह प्रवृत्ति बढ़ती है तो सम्पूर्ण देश के लिए और हिन्दी के लिए हानिकर नहीं हो सकती। राजकीय दृष्टि से हमारा देश सघीय शासन है। जहाँ तक जातीय चेतना के उत्थान और मातृ-भाषाओं की स्वतन्त्रता की सुरक्षा का प्रश्न है उसे केवल हिन्दी के नाम से ही दबाया जाना अनुचित है। इस प्रश्न को हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

हिन्दी तो सर्व सम्मति से मान्य राष्ट्रभाषा है। वही हमारे अन्तर-प्रान्तीय व्यवहार की भाषा है। किन्तु मातृ-भाषाओं के विकास की माँग करने वाले लोगों ने कभी हिन्दी का विरोध किया है? वे तो केवल इतना ही चाहते हैं कि हिन्दी के साथ उन्हें भी अपनी भाषा के विकास का अवसर दिया जाय। हिन्दी यदि बड़ी बहन है तो उसको अपनी छोटी बहनों के व्यक्तित्व के सँवारने से क्या आपत्ति हो सकती है। मातृ-भाषाएँ 'खड़ी बोली की दूध-पीती बेटियाँ नहीं हैं, बल्कि वयस्-प्राप्त बहनें हैं; और वे स्वयं

अपनी गृहस्थी बसाने का निश्चय कर सकती हैं।"[1]

भाषाओं के स्वतन्त्र विकास के प्रश्न पर अनेक भ्रान्तियों के पैदा होने के कारणों पर हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में काफी सामग्री प्रकाशित हुई है। जनपदीय चेतना के मूल में हिन्दी के अन्तर्गत महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'मातृभाषाओं का प्रश्न',[2] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'जनपद कल्याणी योजना'[3] और बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विकेन्द्रीकरण'[4] योजनाएँ दी हैं। इन योजनाओं में मातृ-भाषाओं के प्रश्न पर काफी मन्थन किया गया है। संयुक्त प्रान्तीय प्रगतिशील लेखक संघ की कौंसिल ने इस विषय की अनिवार्यता को समझकर श्री शिवदानसिंह चौहान को 'जनपदीय भाषाओं के प्रश्न' पर विस्तृत रिपार्ट तैयार करने के लिए आग्रह किया था। उस रिपार्ट में सभी तर्कों और योजनाओं पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। यहाँ उन सब बातों का जिक्र करना सम्भव नहीं, किन्तु इतना कह देना जरूरी है कि प्रान्तीय भाषाओं के विकास से हिन्दी को यथेष्ट लाभ ही होगा। "बोलियों में जहाँ भाषा को विभूषित करने की सामर्थ्य है, वहाँ उनके प्रदेश के संस्कारों की परम्परा का बीज भी निहित है, जो हमारे इतिहास और संस्कृति के स्रोत हैं। इन स्रोतों को सजीव रखना हमारे लिए इतना ही आवश्यक है, जितना जीवन। इस पर भी इन बोलियों में एक ऐसा सुदृढ़ स्नेह-सूत्र गुँथा हुआ है कि वे पृथक् दिखाई देते हुए भी एक रूप बनी हुई रहती हैं। वह है संस्कृति का आधार, जिसमें दिखाई देने वाली विभिन्नता में भी एकता सुरक्षित है।"[5] अतः हमें बोलियों या जनपदीय भाषाओं से भय खाने की

१. 'जनपदीय भाषाओं का प्रश्न', शिवदानसिंह चौहान, पृष्ठ २२६।
२. 'हंस, सितम्बर', १९४३।
३. 'पृथ्वी पुत्र', (१९४९)।
४. 'विशाल भारत', फरवरी, १९३४।
५. देखिए सम्पादकीय टिप्पणी, 'विक्रम', नवम्बर, १९५२।

आवश्यकता नहीं। हिन्दी की निधि तो ये ही भाषाएँ हैं, जिनमें वह अपने वर्तमान अभाव को दूर करेगी। नए-नए शब्द, मुहावरे, अभिव्यक्ति-पद, और व्यञ्जना-शक्ति उसे इन्हीं 'जनपदीय' भाषाओं से मिलेगी। अतः इसमें सन्देह नहीं कि हानि की अपेक्षा ये भाषाएँ तो हिन्दी के लिए कल्याणकारी हैं। इस दृष्टि से मालवी और उसके साहित्य के विकास का प्रश्न अपनी उन्नति के साथ-साथ हिन्दी की उन्नति में भी योगदायी सिद्ध होगा।

पिछले पृष्ठों में मालवी और उसके साहित्य पर संक्षेप में विचार किया गया है। किन्तु कार्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। मालवी के सम्बन्ध में अभी अनेक प्रश्न शेष हैं। मालवी के प्राचीन साहित्य का अनुसन्धान, लुप्त होते हुए लोक-साहित्य का संग्रह और आधुनिक साहित्य के विकास की आवश्यकताएँ लक्षणीय हैं। मालवा में ऐसे अनेक पुराने घर हैं, जिनमें हस्त-लिखित पोथियाँ दबी हुई हैं। रियासतों के भाण्डार-गृहों में, माण्डलिकों के यहाँ और ठिकानों में पुरानी सामग्री अवश्य विद्यमान है। यदि शासन-संस्थाओं के द्वारा ऐसी सामग्री के संकलन और उस पर यथोचित अनुसन्धान के लिए सुविधाएँ प्रदान करें तो बहुत-कुछ हो सकता है। संक्षेप में हमें निम्नांकित अभावों को दूर करने की योजनाएँ शीघ्र ही कार्यान्वित करनी चाहिएँ।

मालवी लोक-साहित्य

मालवा की भूमि में बसने वाली जनता के पास अपार सामग्री है, जिसे परम्परा से वह अपनाती चली आती है। स्त्रियों के विविध गीत, लोकोक्तियाँ सन्त-साहित्य, त्योहारों और उत्सवों के लम्बे-लम्बे गीत-प्रबन्ध, लोक-कथाएँ, लोकोक्तियाँ और अन्य कितनी ही प्रकार की अभिव्यक्त होती रहने वाली कंठावसित साहित्य-सम्पत्ति का संग्रह जरूरी है। मालवा की लोक-वार्ता (Folklore) केवल थोड़े-से संग्रह-मात्र से नहीं जानी जा सकती। उसके लिए भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से संग्राहकों को जुटने की आवश्यकता है। सामग्री जैसे-जैसे प्राप्त होती जाय वैसे-ही-वैसे उसके प्रकाशन का

सिलसिला भी चलना चाहिए। फिर तो लगभग हजार-डेढ़-हजार गीतों का एक प्रामाणिक संग्रह, लोकोक्तियों और लोक कथाओं के संग्रह तथा रीति रिवाजों पर प्रकाश डालने वाली पुस्तकों का प्रकाशन निकट भविष्य में पहले हो जाना चाहिए, जिससे कि मालवी लोक-साहित्य के अध्ययन और अनुसन्धान के लिए मार्ग प्रशस्त हो सके।

ध्वनि-संकलन

गीतों की धुनों का रिकार्डिंग भी ध्वनि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य है। वैसे कुमार गन्धर्व ने अनेक गीतों की स्वर-लिपियाँ तैयार की हैं। रिकार्डिंग के माध्यम से यह कार्य और भी सरल हो जायगा। कहा जाता है कि इन्दौर के किसी प्रभाकर निंबूरे नामक सज्जन ने कुछ मालवी लोक-गीतों की स्वर-लिपियाँ बनाई थीं, पर वे अब उपलब्ध नहीं हैं। इस दिशा में गम्भीरता पूर्वक प्रयास करने की आवश्यकता है। ये ही स्वर-लिपियाँ और रिकार्डस् आगे आने वाले अनुसन्धान-कर्ताओं के लिए एवं भारतीय संगीत को लोक-संगीत के निकट लाने में सहायक सिद्ध होंगे।

हमारा दृष्टिकोण 'एकेडेमिक' तो हो ही, पर उसे रूढ़िगत सिद्धान्तों का पल्ला पकड़कर नहीं चलना है। यदि नये सिद्धान्तों से हम नई बातों की खोज सरलता पूर्वक कर सकते हों तो हमें उन्हें अपनाना चाहिए। लोक-गीत और लोक-साहित्य के सम्बन्ध में हम यहीं तक मानकर न रुक जायँ कि उनमें जन-जीवन के दर्शन होते हैं, अपितु उनमें इतिहास और मन के गूढ़ भेदों को प्रकट करने की क्षमता और साहित्य तथा भाषा-विज्ञान को पुष्ट करने लिए यथेष्ट सामग्री है।

भाषा-पर्यवेक्षण

मालवी भाषा और उसके भेदों का विस्तार पूर्वक पर्यवेक्षण भी अपेक्षित है। इससे हमें उलझनों को सुलझाने और नये ज्ञान को प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। खोज करने वाले जिज्ञासुओं को मालवा के भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर भाषा की दृष्टि से प्रचलित भेदों के मानचित्र तैयार करके

उन पर विवेचन करना चाहिए। थोड़े परिश्रम के पश्चात् हम बहुत-कुछ कर सकेंगे। भाषा-पर्यवेक्षण के साथ मालवी के व्याकरण की अनिवार्यता जुड़ी हुई है। प्रामाणिक मालवी के विकास के लिए व्याकरण की सामान्य-रूपरेखा तो प्रथम प्रकाश में आ ही जानी चाहिए।

अनुसन्धानात्मक प्रवृत्तियाँ

इन अपेक्षाओं का निराकरण तभी सम्भव है जब संग्राहकों के साथ अनुसन्धान में रुचि रखने वाले साहित्यिक एवं जिज्ञासु भी हों। यह प्रसन्नता का विषय है कि श्री चिन्तामणि उपाध्याय मालवी-गीतों पर अनुसन्धान कर रहे हैं। नागपुर-विश्वविद्यालय ने मालवी-गीतों-सम्बन्धी उनका विषय स्वीकार किया है और वे डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन' की देख-रेख में कार्य करने में प्रवृत्त हो गए हैं। भाषा-विषयक अनुसन्धान के लिए तथा समाज-शास्त्रीय दृष्टिकोण से मालवी और उसमें अभिव्यक्त मालवी-जीवन पर काफी लिखा जा सकता है। मालवी लोक-साहित्य की राजस्थानी, गुजराती, बुन्देलखण्डी आदि निकटवर्ती भाषाओं के साहित्य के साथ तुलना करने की प्रवृत्ति अनुसन्धान के अन्तर्गत ही आती है। अभी ऐसा प्रयास हुआ नहीं है। वह भाषाओं में निहित एकता सूत्र को प्रस्तुत करने का उचित मार्ग है।

समितियाँ

इस ओर संगठित प्रयास करने से सफलता शीघ्र मिल सकती है। अतएव स्थान-स्थान पर 'लोक' और उसके 'साहित्य' के प्रति रुचि रखने वाले लोगों की समितियाँ बनाई जायँ। ऐसी समितियों को शासन से सहायता मिलनी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो उनके द्वारा संग्रहीत साहित्य की सुरक्षा के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। सन् १९५३ में 'मालव-लोक-साहित्य परिषद्' (उज्जैन) ने जब निमाड़-क्षेत्र में जाकर वहाँ की भाषा और संस्कृति का पर्यवेक्षण किया तब शासन ने आर्थिक सहायता देकर परिषद् के काम में सहयोग दिया था। निमाड़-पर्यवेक्षण से प्रेरणा ग्रहण करके स्वर्ग निमाड़-

क्षेत्र के साहित्यिकों ने 'निमाड़ लोक-साहित्य-परिषद्' की स्थापना की है, जो हर्ष का विषय है। निमाड़ के सन्त सिंगा का साहित्य निर्गुण धारा के कवियों के साहित्य की कड़ी है। उनका प्रामाणिक संग्रह उनकी जीवनी के साथ प्रकाश में आना चाहिए। यह काम नव स्थापित परिषद् अच्छी तरह से कर सकती है। संग्रह का कार्य छोटा नहीं है, इसलिए ऐसी और भी परिषदें होनी चाहिएँ, पर उनका सम्बद्धीकरण प्रमुख संस्था से बना रहे।

पत्र

प्रकाशन के साथ-समय प्रचार के लिए एक साप्ताहिक या पाक्षिक पत्र भी विशुद्ध मालवी भाषा में प्रकाशित होना चाहिए। आधुनिक मालवी की रचनाओं और संग्रहीत साहित्य की जानकारी आदि के लिए उसकी आवश्यकता अनुभव की जा रही है। मालवी के पत्र से कार्य करने की प्रवृत्ति को प्रेरणा तो मिलेगी ही, साथ ही एकता का सूत्र भी दृढ़ हो सकेगा।

अस्तु, प्रत्येक दिशा में योजनाबद्ध कार्य हो। वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने जिन साधनों को सुलभ बना दिया है, उनका प्रयोग भी किया जाय।

मालवी मालवा की अपनी भाषा है। उसे सँवारना और पनपाना इसलिए अनिवार्य है कि उसमें जन-जीवन की चेतना के तत्त्व निहित हैं। अपनी भाषा का माध्यम पाकर जन के जीवन में जो नई चेतना उठ रही है वही चेतना जनपद की चेतना है।

: ञ :

लोक-गीत (मालवा)

'साजन'

साजन समदरिया का झोले पेले पार

साजन खेले सोवटा।

साजन कुण हार्‌या कुण जीत्या

हार्‌या-हार्‌या लाड़ी का बाप

(अमुकजी) जीत्या।

घर मे से बऊ लाड़ी बोल्या—

"हारता-हारता काँकड़िया रा खेत मारूजी

म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या ?

हारता-हारता दाबा माय का गैयाँ मारूजी

म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या ?

हारता-हारता चढ़वारी सेजी म्हारा मारूजी

म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या ?

हारता-हारता गुवाड़ा माय की लछमी मारूजी

म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या ?

हारता-हारता चार भवन ना लोग मारूजी

म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या
हारता-हारता चार जना में बोली मारूजी
म्हारी राजल बेटी क्यों हार्‌या ?"

'मामेरा'

गाडी तो रडकी रेत में रे बीरा
उड़ रही गगना धूल ।
चालो म्हारा छोहरी उतावला रे
म्हारी बेन्या बई जोवे वाट ।
छोहरी का चमक्या सींगडा रे
म्हारा भतीजा को झगल्यो झाग ।
भावज बई को चमक्यो चूड़लो रे
म्हारा बीरा जी का पचरँग पाग ।
काका बाबा म्हारा अत घणा रे
म्हारा गोयरे होता जाय ।
माडी को जायो बीरो एकलोरे
म्हारी बरद उजाल्या जाय ।[1]

: आ :

"बस 'बसन्त्या' बरसात अई गई रे"

बस 'बसंत्या' बरसात अई गई रे ।
जीवी ने जस जाए जे 'बसंत्या',
जिन्दगी जई री थी,
पण हान अई गई रे ॥
बस बसंत्या बरसात अई गई रे ।

1. 'मालवी लोक-गीत' से ।

१

'बसंत्या' चौदा बरस की याद मत देवाड़,
बात साँची है कांई सुणे तो म्हारे से केवाड़ ॥
'हूँ' भण्यो नी हूँ लोग म्हारे यूँज ताणे है,
'उनखे मालम है'?
गूँगो गोल खाय है, पण सवाद खे जाणे है ॥
नी 'साँवत' का मूँडा पे सुर्खी थी,
नी 'कनइया' के कान में मुर्की थी
नी 'मुनीरा' के माथे टोपी तुर्की थी,
म्हारे कय लग गाँवा ने रोवाँ,
'कांई जाणें है'? 'नवत तीस अने तीस'
काँ खोर कसे सईं गईं रे
बात भूली जय सब तो बरसात भईं गईं रे ॥
बस बसंत्या बरसात भईं गईं रे ॥

२

बेन बारही 'बसन्ती', भईं की बाट जोइ री थी।
राखी की रीत सार, पीयर को मूँडो धोइ री थी ॥
खास राखी को तेवार थो, पण और देवस थो।
चौदा बरस की पीर पड़ी थी, म्हारे तो काँटो मपबस थो ॥
साँचो सावण सुहावणो होतो,
'बसन्ती' गीत फिर गाती।
राखी-फंदोरा और पोंचो, संग पेड़ा और बताशा,
मन भर खाती ॥
वो बसन्ती रंग सुनहरो, धानरो पेर को पानी।
ने पेरती समराज अईं-अईं रे,
ने देखी बीर 'बसंत्या' बरसात भईं गईं रे ॥
बस बसन्त्या बरसात ॥

१

'बसंत्या' चोरदा बरस की याद मत देवाड़,
बात साँची है कोई सूणे तो म्हारे से केवाड़ ॥
'हूँ' भण्यो नी हूँ लोग म्हारे यूँ ज ताणे है,
'उनके मालम है'?
गूँगो गोल खाय है, पण सवाद खे जाणे है ॥
नी 'सोंवत' का मूँढा पे सुर्की थी,
नी 'कनइया' के कान में मुर्की थी
नी 'सुनीरा' के माथे टोपी तुर्की थी,
अरे कय लग गोंवा ने रोवाँ,
'कोई जाणें है'? 'तपत तीस अने रोस'
काँ ओर कसे सई गई रे
बात भूली जय अब तो बरसात अई गई रे ॥
बस बसंत्या बरसात अई गई रे ॥

२

बेन बारड़ी 'बसन्ती', भई की बाट जोइ री थी।
राखी की रीत सार, पीयर को मूँडो धोइ री थी ॥
आज राखी को तेवार थो, पण बीर बेबस थो।
चोदा बरस की पीर पड़ी थी, अरे यो काँको अपजस थो ॥
साँचो सावण सुहावणो होतो,
'बसन्ती' गीत फिर गाती।
राखी-कंदोरा और पोंची, संग पेड़ा और पतासा,
मन भर खाती ॥
वो बसन्ती रंग लुगड़ो, घागरो घेर को पाती।
ने पेरती ससराल जई-जई रे,
ने केवी बीर 'बसंत्या' बरसात अई गई रे ॥
बस बसन्त्या बरसात ॥

३

पुजारी 'परसराम' ने 'तिलोक्यो' तेली ग्रने 'माँग्यो' माली।
पाणी परमेसरा की पोथी पड़ी ने
दीवा में तेल कूड़ी ने
झाड़-झाड़ चढी ने सुगन्धा फूल लातो थो, टाली-टाली ॥
'केरया' कुमार की क्यों को हे,
बापड़ा का गरीव गदा, ने घर वालो,
पाणी को पतो नी, दरोवदी का काँ दरसन ?
ग्राँखे थई गई थी जाली ॥
'चेरया' चमार की तबीयत फिकर से हुई थी माँदी।
बापड़ा ने एकादी पनी साँदी की नी साँदी ॥
लोग ना साँची कईग्या कि,
फिकर फकीर ले भी खई गई रे!
'बसंरया' फिकर मत कर, अब तो बरसात थई गई रे।
बस बसन्त्या बरसात ॥

४

'लच्छो' लुवार ने कारीगर 'कनइरया'
सेठ 'सीताराम' रे कई दिया था भइय्या-भइय्या,
साँची कोजो. बखत बिगड़ी है, अबे कूट की नी है सहय्या
अबे राजा काँ है सो पाणी खातर खेत में हल चलावे।
'राम की', ग्राज-कल की राणी पगे-पग लेते रोटी खई आवे ॥
जाय दो या हमारा बस की बात नी, पाणी आवे की नी आवे
हमने 'उज्जणी' करी थी, गाँव ने गाँकर गोया में सेकी थी।
डूनरा में उठी रे घण से काली बादली,
थोड़ी मेंडी नी थोड़ी काडीज फेंकी थी ॥
ढाँढा ओर का पाया, सेरा मोर का पाया,
पाणी पनारा पे पड़री ने पनाल पे आवो।

ऊँई–'टिकल्यो', टापरी में से टसकी ने,
किनी तरती से तरतई रियो थो ?
इको काम सरतो थो, पण यो बापड़ो नाहक दूसरा का दुख से मरतो थो
ढोल बगाड़ो थो ने कम्बल खे लत्ता से जोड़यो थो।
पण कोईने धार ऊनी कपड़ा पेरी ने, फिर भी दुशालो ऊपर से ओढ़यो थो
कई शालो ने कई डनालो, मनखे भेम की बात खई गई रे ॥
बखत पे खेत बो 'बसंत्या', बरसात भई गई रे ॥

७

पूछणे वाला ने पूछयो, 'इना टिकल्या खे या कायकी टेंटस हे' ?
'अने इका पास हे कंई ? तो इतरी एंठस हे'
'हे तो टूटी टापरी ने एक बखत काज दाणा'।
'फिर इका मूँडा पे क्यों मान हे ? ने इको जिन्दगी से क्यों जान हे ?
या कोई बताओ, जचे जाणा' ॥
केणे वाला ने कई दियो, 'देखो दुशालो मोल में भारी हे।
तो कम्बल तोल में भारी हे ॥
पाणी की बूँद टापरी में टप-टप टपकी री थी।
'टिकल्या' की परणी बेरा 'टिकली' छोरा खे थप-थप थपकी री थी
पाणी जोर से आयो 'टिकली' ने गीत फिर गायो।
इतरा में झोंपड़ी झाड़ समेत झड़ोगी।
देखते-देखते बई ने. आगे बड़ोगी
लोगना लपक्या 'अरे झोंपड़ी जई री हे'।
'टिकल्यो' मस्ती से बोल्यो 'दुनिया जीती हे,
पपड्यो तीसो हे ने पपइयण फिर भी रीती हे'।
'सुक सींचो' भगवान साँची बरसात भई गई रे।
बस बसन्त्या बरसात भई गई रे ॥[१]

---

१. आनन्दराव दुबे 'मालवी की कविताएँ' से।

: ३ :

मालवी के तीन रूप

'रतलामी' मालवी

"अणी हिन्दुस्तान मे ज्यादातर खेती ही सब लोग करे हे, और यो देश खेती ही को देश हे। अणी देश का किसान आपणी खेती भगवान् का भरोसा पर रखे हे। अणी वास्ते जद कदी कम पाणी बरसे या कदी पाणी बरसे ही नी तो काल पड्या सरीखो मौको हो जावे हे। पुराणा जमाना मे जणी समय में राजा लोगाँ को राज थो तो वी लोग भी आपण लोगाँ के चुसता और आपण लोगाँ मे कई दुख दरद हे उणके अठी कई तरह से साल सँबार नी करता था। पण जदी अणी देश को राज आपण लोगाँ के हाथ मे आ गयो, जद आपणी ही सरकार ने आपाँ मे कई दुख दरद होई रया हे, ईणा सब दुख-दरद मिटावा वास्ते निगाह दौड़ाई, और पाँच बरस मे आपाँ लोगाँ को दुख दरद जं सु पाणी की कोताई, धान की कम पैदावारी, और भी कई बातों को दुख मिट जावे अणी तरह की बात ठहराई, व आपण लोगाँ वा बात बताई, अणी बात मे चम्बल नद सुँ कई-कई और कणी-कणी तरह सुँ फायदो हो सकेगा यो खास करीने बतायो। चाँबल नद सुँ अणी मालवा की व साथ-साथ मारवाड़, मेवाड़ का लोगां की खेती और नरी बातों की उचोंड होगा।"*

'मन्दसौरी' मालवी

बात-की-बात ने करामात-की-करामात ने बींडी को बोंटो छटारा हाथ। वर्णों बोंटा पर एक बींडी बेठी। वा बींडी ब्याणी। वर्णी के एक ऊँट ब्यो। उ ऊँट असो व्यो के वर्णी के ठाकुरजी ने पगनी दयाला। पण वर्णी की गर्दन अतरी लम्बी की दी के उ लछमण झूला ती गर्दन लम्बी करे तो रामेश्वर की रूँकड़ा खाई जा।

एक दिन वर्णी ऊँट ने भूक लागी तो वर्णी ने गर्दन लम्बी कीदी ने ... ा का बाग का नाम रूँकड़ा का पत्ता खाइम्यो। कबे

* ... की प्रचार-विज्ञप्ति से।

ऊँहूँ–'टिकल्यो', टापरी में से टरकी ने,
किनी मस्ती से सरतई रियो थो ?
इको काम सरतो थो, पणयो बापड़ो नाहक दूसरा का दुख से मरतो थो
ढोल उगाड़ो थो ने कम्बल खे छत्ता से जोड़ रो थो।
पण कोईने धार ऊनी कपड़ा पेरी ने, फिर भी दुशालो ऊपर से ओड़रो थो
कई शालो ने कई दनालो, मनखे भेम की बात खई गई रे॥
बरसत पे सेत थो 'बसंत्या', बरसात थई गई रे॥

७

पूछणे वाला ने पूछ्यो, 'इना टिकल्या से या कायकी टेंटम है' ?
'अने इका पास है कंई ? तो इतरी एंठस है'
'है तो टूटी टापरी ने एक बखत काज दाणा'।
'फिर इका मूँडा पे क्यों मान है ? ने इकी जिन्दगी में क्यों जान है ?
या कोई बताओ, जबे जाणा' ॥
केणे वाला ने कई दियो, 'देखो दुशालो मोल में भारी है।
तो कम्बल तोल में भारी है ॥
पाणी की बूँद टापरी में टप-टप टपकी री थी।
'टिकल्या' की परणी बेंरा 'टिकली' छोरा खे थप-थप थपकी री थी
पाणी जोर से आयो 'टिकली' ने गीत फिर गायो।
इतरा में झोंपडी झाड़ समेत झड़ेगी।
देखते-देखते बई ने आगे बढ़ीगी
लोगना लपक्या 'अरे झोंपड़ी जई री है'।
'टिकल्यो' मस्ती से बोल्यो 'दुनिया जीती है,
पपइयो तीसो है ने पपइयण फिर भी रीती है'।
'सुक सींचो' भगवान साँचो बरसात भई गई रे।
बस बसन्त्या बरसात थई गई रे ॥'

१. आनन्दराव दुबे 'मालवी की कविताएँ' से।

: ३ :

मालवी के तीन रूप

'रतलामी' मालवी

"अणी हिन्दुस्तान मे ज्यादातर खेती ही सब लोग करे हे, और यो देश खेती ही को देश हे। अणी देश का किसान आपणी खेती भगवान् का भरोसा पर रखे हे। अणी वास्ते जद कदी कम पाणी बरसे या घणो पाणी बरसे तो नी तो काळ पड्या सरीखो मौको हो जावे हे। पुराणा जमाना मे वणी समय मे राजा लोगाँ को राज थो तो वी लोग भी आपण लोगाँ के सुखता और आपण लोगाँ मे कई दुख दरद हे उणके अठी कई तरह से साल सँभार नी करता था। पण जदी अणी देश को राज आपण लोगाँ के हाथ मे आ गयो, जद आपणी ही सरकार ने आपाँ मे कई दुख दरद होई रया हे, ईंणा सब दुख-दरद मिटावा वास्ते निगाह दौड़ाई, और पाँच बरस मे आपाँ लोगाँ को दुख दरद जसु पाणी की कोताई, धान की कम पैदावारी, और भी कई बातों को दुख मिट जावे अणी तरह की बात ठहराई, व आपण लोगाँ वा बात बताई, अणी बात मे चम्बल नद सुँ कई-कई और कणी-कणी तरह सुँ फायदो हो सकेगा यो खास करीने बतायो। चाँबल नद सुँ अणी मालवा की व साथ-साथ मारवाड़, मेवाड़ का लोगों की खेती और नरी बातों की उचोंढ होगा।"[1]

'मन्दसौरी' मालवी

बात-की-बात ने करामात-की-करामात ने बीड़ी को बोटो बटारा हाथ। वणी बोटा पर एक बीड़ी बेटी। वा बीड़ी ब्याणी। वणी के एक ऊँट व्हो। ऊ ऊँट अशो व्हो के वणी के ठाकुरजी ने पगनी वराया। पण वणी की गर्दन अतरी लम्बी की दी के ऊ लछमण झूला ती गर्दन लम्बी करे तो रामेश्वर की रूँकड़ा खाई जा।

एक दिन वणी ऊँट ने भूक लागी तो वणी ने गर्दन लम्बी कीदी ने रामेशरजी के राजा का बाग का नाम रूँकड़ा का पत्ता खाद्म्यो। अबे

1. चम्बल-बाँध-योजना की प्रचार-विज्ञप्ति से।

रामेशरजी का राजा ने चोकी पेरा वाग मे वेगाड्या ने अणी चोर को पतो लगाड्यो पण ऊँट हाते नी आयो। एक दिन फेर वणी ने गर्दन लम्बी की दी। तो एक शपाई ने गर्दन पकड़ी लीदी। अबे ऊँट दरप्यो ने पाछी गरदन छोटी कीदी तो उ शपाई भी गर्दन के हाते लछमण-भूला में आइग्यो। अबे उ शपाई घबराणो ने ऊँट ती कयो के हे ऊँट राजा मूँ थारी कई नी वगाड़ूगा मने थू फेर रामेशरजी में मोकली दे ने थारी एक निशानी मने दई दे। ऊँट ने वाको फाइयोन एक तल काडी ने दी दो और कयो के अणी तल ने थारा राजा ने दीजे और अणी ने थारा ने थारा चोवीश कोस का घेरा में बावजे तो अणी तल का फल वद जागा। वणी शपाई ने फेर वा गर्दन पकड़ी ने उ पाछो वणी के नाम में आइग्यो। फेर वणी ने राजा ती कयो के राजाशा राजाशा फरयाद है। तो राजा बोल्यो के कई वात है चोर पकड़ाणा के बोनी तो फेर शपाई ने ऊँट की बात की ने उ तल राजा ने दीदो। राजा ने थारा ने थारा चोवीश कोश का घेरा में उ तल वायो। उनारा का दना में वणी तल का रूँकड़ा के पीदे हाथी बँधवा लागा।····"[1]

आदर्श मालवी

"काल कुँवार सुदी पाँच का दन आपकी चिट्ठी म्हारे मिली। बाँची ने गद-गद हुई ग्यो ने जदे मालूम पड़ी कि अरे यो तो कवि-सम्मेलन को नेवतो है। अबे वीं म्हारा से फेंगाड़ो आँख के आगे आँख मिली ने मय्या दर कन्या पंछी ले पाँख मिली।"

यो जाणो ने कि यो योग नरा दन में आयो है····अने क भी फिर अशनिका में—म्हारो हिरदो फूल हरस्यो है बाँची श्याम तमारा प्रेम के दो आँखे दरस्यो है।

म्हा, सफर करूँगा। मुझाने ने गाते-गाते दर्शन करूँगा मनई मई पेन्साये। कई करूँ कलम बन्द नी होती—पण म्हारो पेनल को । तमारा वगत को बरबादी नी करे यास्ते यहि कलम बन्द करी

[1] 'वीणा' में प्रकाशित एक कहानी से।

रियो हूँ..."[1]

मालवी के अन्य उदाहरण

(क) "म्हने पेताँलाज मालवी ती मोह थो। पण जद से आनरा भराकरया गीट री पोथी देखी म्हने ओर भी बडावो मिल्यो नी मालवी नी सेवा करवाने म्हारो मन बड्यो।

मालवी ना लेख, छन्द ने वारताँ कणी तरे नी होवा चइये, जणी की बनू ध्यान ती ने ओशान ती विचार करयो जाय।"[2]

(ख) "उज्जैन गया ने टहापचोल ना घाट पे हापडिया ने धोती पसाडी ने होया रूरा ना टीला काड्या। वाँथी मगर मुआ मे आया तो जलेबी खादी। जलेबी खादी ने बाईसा नी हवेली देखी। कतरी मोटी रे दादा के की को एक-एक खोंबो एक टो लाख को वेगा तो आखी हवेली एक मोर की तो वेगीज।"[3]

(ग) "चतरभुज मालो! आपने यो-नाम सुन्यो है? आप इकासे कदी मिल्या हो? नी मिल्या! अबी तक नी मिल्या! तो फिर समजोलो के आप अबी पेदाज नी हुआ।

या मुगे मानने की बात नी है। बाहर का बड़ा-बड़ा आदमी हुणते देखणे सुणणे की इच्छा रखे ने आप घर का बड़ा लोग हुण से नी मिलो! ने कदी तो वी अपणा याँराज है! या बात जरूर है के याँ का आदमी याँज नी पुजाय पण हूँ कृ आप चतरभुज का याँ एक बखत जइने देखो। ने फिर आप हाथ जोड़ी ने पाँव पड़ता हुआ धन्य-धन्य केता बाहरे नी आओ तो म्हारो नाम बदली दीजो।

अरे साहब ऊ आदमी हेज ऐसो। एमी सिफ्त है उकामें मे के कई कूँ। हूँ बी मोत दिन तक उका बारा मे सुणतो रियो। मिलवे की बात हूँ बी आपकी तरेज टालता रियो। पण फिर तो तीन बरस म्हारे सेंचीन वाँ

१. आनन्दराव दुबे।
२. हरीश निगम (नागदा)।
३. सूरजप्रसाद सेठी (उज्जैन)।

लड़गया । बड़ी तारीफ करी । हूँ खिंचतो चल्यो गयो ।...'

(घ) "मालवी बोली में जो साहित्य है, वो बिखरयो हुवो है, एक जगे नी है, इससे हमखे अपना साहित्य की विशेषता को चैये उतनी भान नहीं होने पायो है । 'मालव' लोग इस देश में भोत पुराना जमाना से है, इनको गणतन्त्र इतिहास में अपनो खास महत्त्व और पुरानीपन रखे है । सिकन्दर का दाँत खट्टा करने वाला मालवी लोग था, महाभारत और पुराण में मालवी लोगों की कई कथा-गाथा भरी हुई हैं, तब उनकी भाषा, उनको साहित्य कई पिछड्योज रियो होयेगा, या तो हुईज् नी सके, पर मालवा ने बड़ा उलट-पुलट, हवा का फेर-फार देख्या, इमे अपनो साहित्य भी वे बचई नी सक्या, पर जिस अवन्ती भाषा खे मालवा ने जनम दियो और जिससे प्राकृत, अपभ्रंश, महाराष्ट्री आदि पनपी, फैली वा भाषा ज् आज मालवी का नाम से चली आवे है । जो उदाहरण पीछे का मिले हैं उनमें और आज की मालवी में भोत फरक नी पड़यो है । जितना फरक नगर और गाँव की बोली में दिखे है, उतनोज् पुरानी और नई में है । फिर बी इसमें वोज् ओज् , वोज् शक्ति और विचार खे हृदय का साथ प्रकट करने की क्षमता है ।"²

: ई :

कबीर का लोक-गीतों पर प्रभाव

कबीर के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने लोक-मानस को अक्षुण्ण रूप से आकर्षित किया । उनके अकाट्य तर्कों और शास्त्रों की मिथ्या बातों का खुला विरोध निम्न जातियों की दलित भावनाओं को सन्तोष देने लगा । उन्हें वाणिज्य-व्यवस्था के नाम पर होने वाले अत्याचारों के घोर प्रतिवाद के लिए कबीर के रूप में एक प्रतिनिधि मिल गया । कबीर की तरह अन्य सन्तों ने भी निम्नवर्गीय लोक-समाज की हीन भावना का परितोष किया ।

1. श्रीनिवास जोशी (बड़नगर)।
2. सूर्यनारायण व्यास (उज्जैन)।

यही कारण है कि जो-कुछ कबीर ने ग्रहण किया वही निम्नवर्गीय दलित जातियों ने अपने गीतों में ग्रहण किया। चाहे उन्होंने कबीर आदि के सिद्धान्तों को ठीक तरह से न समझा हो, पर उनके द्वारा प्रचलित कतिपय संकेतार्थक शब्द उन्होंने ज्यों-के-त्यों अपना लिये। यही कारण है कि उन शब्दों के प्रति एक रहस्यवादी मान्यता भी उनमें बराबर मिलती है।

नीचे हम कुछ ऐसे ही लोक-गीत प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें कबीर का यथातथ्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। युगों को पार करता हुआ कबीर-पन्थियों द्वारा सन्तों का प्रभाव अभी तक निचली जातियों के आत्म-सन्तोष का साधन बना हुआ है।

१

हाँ ए म्हारी हेली[1] मैं तो पूरबिया उनका देश की
बिना पेड़ एक दरखत ठाढ़ा, छाय नजर नहीं आवे रे
पान-फूल तो दिसे नहीं, बास गगन चढ़ जावे रे
म्हारी हेली···

धरम डाल दोई पंछी बैठा पंख नजर नहीं आवे
उड़के पंछी चला गगन में, राम-नाम लऊ लागी
म्हारी हेली···

बिना पाल एक सरवर भरिया नीर नजर नहीं आवे
मछिया वामें दिसे नहि रे समदर[2] हिलरा[3] खावे
म्हारी हेली···

पीपल पूजन में गयी अपना कुवल[4] की लाज
पीपल पूजन हरि मिल्या एक पंथ दोई काज
म्हारी हेली···

पत्तो टूटी डाल से और पवन उड़या जाय
अबका बिछुड्या कद मिला, जाय बसा घण दूर
म्हारी हेली···

---

१. सखिन। २. समुद्र। ३. हिलोरा। ४. कुल।

'कबीर-ग्रन्थावली' में यही भावना एक पद में मिलती है। पद की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना उचित होगा। पंक्तियाँ हैं :

अवधू सो जोगी गुरु मेरा, जो या पद को करे निवेरा।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिना फूल फल लागा।
साखा पत्र कछू नहिं वाके, अष्ट गगन मुख बागा॥
पैर बिन निरति करा बिन बाजे, जिभ्या हीणा गावै।
—इत्यादि

इन गीतों को मालवी-क्षेत्र से प्राप्त किया गया है। सन् १६४६ में इन पंक्तियों का लेखक ग्राम-पर्यवेक्षण-कार्य के लिए 'प्रतिमा-निकेतन' की एक समिति के साथ जून मास में मालवा के ग्राम लेकाड़ी, टंकारिया और गोंदिया में रहा था। जैसा कि कहा गया है कि कबीर से दलित जातियाँ अधिक प्रभावित रही हैं, अतः ये गीत भी ऐसी ही प्रभावित दलित जातियों, बलई और चमारों के गायकों से प्राप्त हुए हैं। गायक अपने गीतों का विश्लेषण करने में असमर्थ हैं। हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर श्रद्धा-भावना से बोझिल होकर, अस्पष्ट रूप में ही सामने आये। वे कहते, थे : "मालक साब, तमारे हम समझाँवा केसे—या तो सब हरि सुमरण की माया है।"

२

आप अलख इन्दर हुई बैठा, बूँद अमी रस छूटा
एक बूँद का सकल पसारा, पुरस-पुरस नर फूटा
अवदू[1] मन बिन करम नी होता।
आदो अंग नारि को कहिये आदो हर गुरु नर को
मात-पिता का मेल मिलिया करी करम की पूजा
पैला पिता एकला होता पूतर[2] जन्म्या दूजा
अवधू...

धरी-आसमान[3] सुन[4] बिच नहीं था

१. अवधूत। २. पुत्र। ३. धरती-आसमान। ४. शून्य।

तभी आपद होई हुआ था ?
साती सायर[1] आठ कोटी[2] परबत,
नव कोटी[3] नाग धरती महिं था
आठो बाहर हो बनासपति महि थी
नहीं था नवलख तारा
बारा मेघ इन्द्र नहीं होता
बारसनवाला नर हुआ था ?

अवधू...

बिरमा[4] नहीं था, बिसनू नहीं था
नहीं था शंकर देव, हाँ जी
कहे कबीर मंडप नहीं होता
मॉडन वाला नर हुआ था ?

अवधू...

कबीर ने कहा है :

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया नहीं तारा।
तब हरि-हरि के जन होते, कहे कबीर विचारा॥

उक्त गीत में कई पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'अवधूत' को ही लीजिए; कबीर के अवधूत विश्वनाथसिंह जू देव की व्याख्यानुसार 'वधू जाके न हो सो अवधू कहावे' नहीं है। 'अवधूत' शब्द सहज यानियों और तान्त्रिकों की देन है। यद्यपि ग्रन्थों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है, पर कबीर के अवधूतों में ऐसा कोई भेद नहीं। कहीं-कहीं गोरख-नाथ को भी कबीर ने अवधूत कहा है। अतः जहाँ कहीं भी कबीर की वाणियों में अवधूत की चर्चा आई है, वहाँ वह गोरखपंथी सिद्ध योगी ही है। वही 'जगधे न्यारा' और साधारण योगी से ऊपर है।

इसी प्रकार 'शून्य' शब्द भी है। नाथपंथियों में ... सहस्रार चक्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उ- नें इस ... प्रयोग ... हुआ।

1. सागर।

कहै दास गुरु पाया
संतन पूछो चटक मिटाई
कहै दास गुरु पाया
चाँद-सुरज की डर की माया
त्रिकुट एक घटघाँट आया
शब्द-सुरत में लय से लावे
वाँ से सुरत बताया
ऐसा मता फकड़ का कीजो
साध संत की निमायी कीजो
के बाजा गोरा के सरन
गुरु भुलाना पाया

ऊपर 'तिरबेणी' (त्रिवेणी) का उल्लेख आया है। कबीर ने नाथ-
पन्थी साधना-पद्धति को अपनाया था, जो अन्तर्मुखी है। इंगला और
पिंगला नाड़ियों के बीच सुषुम्ना की स्थिति मानी गई है। सुषुम्ना मे
तीन नाड़ियाँ (वज्रा, चित्रिणी, तथा ब्रह्म नाड़ी) और है। इस तरह
पाँच नाड़ियाँ, 'पंचस्रोत' या पाँच धाराओं का उल्लेख होता है, जिसकी
व्याख्या 'हठयोग प्रदीपिका' में की गई है। कबीर ने गंगा (इड़ा या
इंगला) और यमुना (पिंगला) का सरस्वती (सुषुम्ना) के द्वारा मझारे
में संगम कराया है। यही स्थान त्रिवेणी है। 'सिकर मेल' का तात्प
शून्य चक्र या सहस्रार पद्म से है। सुरता (सुरति) साधकों का विशे
सांकेतिक शब्द है, जो 'शब्द' या 'सबद' के असीम आनन्द-संगीत
प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है। हँसला (हंसा) को कबीर
सदैव मुक्तात्माओं के अर्थ में लिया है। कहीं-कहीं अवधूत और हंसा
एक समझा गया है। 'सत्गुरू' शब्द सहज यानियों, तान्त्रिकों और न
में समान भाव से प्रयुक्त होता रहा और कबीर के माध्यम से वह लो
गीतों में भी आ गया। यहाँ 'सत्गुरू' का प्रयोग उसी परम्परागत अ
हुआ है।

किया है। कबीर ने इन्हींका अनुकरण किया। ऊपर गीत में सात सागर (सायर) का वर्णन तो परम्परागत है, पर 'आठ कोड़ी परवत', 'नवकोली नाग' और 'बारा मेघ' का उल्लेख अवश्य चिन्तन का विषय है।

३

लख चौरासी भटकत-भटकत, अब के मोसम आयो रे
अब के मोसम चुकी जाय तो कहीं ठोर नहीं पायो रे
बनड़ाते भले रिझायो रे
म्हारी सुरत सुहागन नवल बनी सायब भर पायो रे
हेत[1] की हलदी ने प्रेमरस पीठी तन को तेल चढ़ायो रे
और मन पवन हतिवाली[2] जोड़यो वीर परण घर आयो रे
बनड़ाते०...
राम-नाम का मोड़ बँधाया बिरमा वेद बुलायो रे
अवन्यासी[3] को हुयो समेलो[4] वीर परण घर आयो रे
बनड़ाते०...
राम-नाम का मोड़ बँधाया पड़लो प्रेम सवायो
पाँच (?) बलन में सेज बिछाई ओढ़े प्रेम सवायो रे
बनड़ाते०....

४

गणपत देव हिरदे मनाये
तिरबेणी गुण गाया
सिकर मेल में सुरता लागी-मेल जगाया
हे म्हारा हँसला हेरे भजन में
हे सतगुरु तेरी माया है
अगम निगम—(?)—जार लागी
बठे कबीरा जोवा है
हे धरम पुरी का खुल्या दुवारा

१. प्रेम। २. हस्त-मिलन। ३. अविनाशी। ४. मिलन।

हदे परम गुरू पाया
गंगन चूकी घटक मिपाई
हदे परम गुरू पाया
कोई-पुरम की डर की माया
विनहू छेक अदपाहे आया
शबद-सुरत में लय में लावे
यों में जुदा बताया
ऐसा मता फकड़ का कीजो
साध संत की निशाणी कीजो
के बाला गोग के सरन
गुरू सुहाना पाया

ऊपर 'तिरवेणी' (त्रिवेणी) का उल्लेख आया है। कबीर ने नाथ-पन्थी साधना-पद्धति को अपनाया था, जो अन्तर्मुखी है। इगला और पिंगला नाड़ियों के बीच सुषुम्ना की स्थिति मानी गई है। सुषुम्ना में तीन नाड़ियाँ (वज्रा, चित्रिणी, तथा ब्रह्म नाड़ी) और हैं। इस तरह पाँच नाड़ियों, 'पंचस्रोत' या पाँच धाराओं का उल्लेख होता है, जिसकी व्याख्या 'हठयोग प्रदीपिका' में की गई है। कबीर ने गंगा (इड़ा या इगला) और यमुना (पिंगला) का सरस्वती (सुषुम्ना) के द्वारा ब्रह्मरंध्र में संगम कराया है। यही स्थान त्रिवेणी है। 'सिकर मेल' का तात्पर्य शून्य चक्र या सहस्रार पद्म से है। सुरता (सुरति) साधकों का विशेष सांकेतिक शब्द है, जो 'शब्द' या 'सबद' के असीम आनन्द-संगीत को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है। हँसला (हंसा) को कबीर ने सदैव मुक्तात्माओं के अर्थ में लिया है। कहीं-कहीं अवधूत और हंसा को एक समझा गया है। 'सत्गुरू' शब्द सहज यानियों, तान्त्रिकों और नाथों में समान भाव से प्रयुक्त होता रहा और कबीर के माध्यम से वह लोक-गीतों में भी आ गया। यहाँ 'सत्गुरू' का प्रयोग उसी परम्परागत अर्थ में हुआ है।

'सत्गुरू' शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित करत
वह अपनी अनन्त महिमा से शिष्य पर अनन्त उपकार करके अनंत
खोलकर अनन्त को दिखला देता है। ऊपर गीत में परम गुरु 'सत्गुरू
जिसका परम पद गौरवशाली है। गीत में "उड़द-मुड़द" का मा
नहीं है। इसी तरह "बाला गोरा" सम्भवतः किसी का नाम होना च

नाथ-पंथी साधुओं के प्रति अनेक आश्चर्यजनक कथाएँ सम्पूर्ण
वर्ष में प्रचलित हैं। गोरख और मत्स्येन्द्र, गोपीचन्द, भरथरी, रानी
आदि और आगे चलकर कबीर की जन-कहानियों के विषय बन गए
बात गीतों के क्षेत्र में भी हुई। "धमाली" और "जोगीड़ा" गीत
योगियों के प्रभाव की देन हैं। इस तरह यदि लोक-गीतों पर कबीर के
को अथवा उसके पूर्ववर्ती प्रभाव को ढूँढना चाहे तो वह अवश्य प्राप्त हो

कबीर ने अपने मत के प्रचारार्थ लोक-भाषा का आश्रय लिया
उनके पूर्ववर्ती साधकों ने भी यही किया। अतएव भाषा के माध्यम
लोग जनता के समीप आ सके और अपनी विलक्षण बातों से उसे प्रभ
करते रहे।

ऊपर के चारों गीत धूला और सावतजी नामक गायकों से प्राप्त
हैं। धूला तो मालवा के बेटमा ग्राम के बालकदास बाबा का चेला है।
समय मध्यभारत में कबीर-पंथियों और नाथ-पंथी अखाड़ों का जोर रहा थ
इसीलिए आज भी प्रायः प्रत्येक ग्राम में नाथ-पंथी "जोगी" अथवा "गु
मिल जाते हैं और इन्हींको मानने वाले छोटे-मोटे दल भी साथ ही प
जाते हैं। विशेष रूप से दलित जातियों पर इनका बड़ा प्रभाव है। उन
लोक-गीतों पर यह प्रभाव इसीलिए अध्ययन की वस्तु है। उसमें परम्प
का आदि-स्रोत खोजना आनन्द का विषय है। [१]

---

१. 'धर्मयुग' जुलाई १९५१ में प्रकाशित।

: उ :

वंश-तालिका

: ऊ :

निमाड़ी मृत्यु-गीत[1]

'हालरो'

सोहं थालो हालरो, थरे जाकी निरमल जोत
कि सबद धात को पालणो, थरे पाटया तिन से साठ ।

1. निमाड़ और मालवा में वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'मसाण्या गीत' कहा जाता है। प्रस्तुत गीत 'हालरो' के नाम से प्रचलित है, जिसका अर्थ है लोरी। 'मनाग' की छाप से इसके रचयिता का नाम ज्ञात हो जाता है। रेखांकित अंश संत-परम्परा में प्रचलित सांकेतिक शब्द ही हैं जिनकी व्याख्या करना प्रासंगिक नहीं है।

ऐसी खील जड़ाव कि जावे टढ़िया ठाठ।
सोहं वालो हालरो।
अगासी झुलवा होय दिया, लागे तिरबेणी डोर
अरे जुगत से झूला चलाविया, देख्या 'मनरंग' मोर
सोहं वालो हालरो।
नी बालूड़ा या सोवतो, नी जागतो,
अरे नई रे आया दूध
सदा से सिव जाकी संग में, खेले बजारण को पूत
सोहं वालो, हालरो।
अणहद घुँघरू बाजिया, आज भाग्या छ मेव
अरे सुरता करो हो विचार
आठ कमल जिया दल चढ़या, लागा साँकल डोर
सोहं वालो, हालरो।
नदि सिपटा [1] क घाट प, बठ्या ध्यान लगाय
आवत देख्या हो पिंजरा, लिया गोद उठाय
सोहं वालो हालरो।
आगा से लिखी आया हो सुरता करो हो विचार
राखो सरणा लगाय
सोहं वालो, हालरो।

: ए :

मालवी-भाषा [2]

मालवी एक करोड़ नर-नारी की भाषा हे, उका भीतरी मेट सीमा, प्रान्त प्रभाव श्रोर संस्कार से भले थोड़ी-भोत फरक रखता होवे, पर मूल उकी एकीज हे। यूँ तो इना अपना प्रदेश ने पला कितनीज भाषा के जनम

1. बरदवा से १ मील दूर सुक्षा नदी।
2. मालवी-कवि-सम्मेलन में पढ़ा गया श्री सूर्यनारायण व्यास का गवेषणापूर्ण भाषण।

कर जनपदों की स्वच्छन्द वायु में पनपने वाले साहित्य के 'वास्त-
स्वरूप की परख करने में हम जितने अग्रसर होंगे उतना ही जनता
साहित्यकारों के तथा लोक-जीवन और साहित्य के बीच पड़ी हुई गहरी
को पाटकर उस पर एक सर्व जन-सुलभ सेतु बाँधने में सफल हो सकेंगे।
भारतीय जनता का अधिकांश भाग देहातों में है। उसकी
ना की क्रीड़ा-स्थली ये देहात ही हैं। इन्हींका साहित्यिक
जनपद है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जनपदों की संस्कृति का
न हमारे राष्ट्र की मूल आध्यात्मिक परम्पराओं का अध्ययन है। जिनके
हमारे जीवन की गंगा का प्रवाह बाहरी कलमों से अपनी
करता हुआ आगे बढ़ता रहा है। व्यास और वाल्मीकि,
लदास और तुलसी, चरक और पाणिनि, इन सबका जानपदी संस्कृति
ष्टिकोण से हमें फिर एक बार अध्ययन करना है। किसी समय इन
साहित्यकारों की कृतियाँ जनपदों के जीवन में बद्धमूल थीं। जिस समय
व्यास ने द्रौपदी की छवि का वर्णन करते हुए तीन वर्ष की श्वेत रंग
की मस्त गौ को (सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायनी—विराट
-११) उपमान रूप में कल्पित किया, जिस समय वाल्मीकि ने अराजक
नपद का गीत गाया, जिस समय कालिदास ने मक्खन लेकर उपस्थित
, ग्राम-वृद्धों से राजा का स्वागत कराया (हैयंगवीनमादाय घोष
द्धानुपस्थितान्) और जब पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में सैकड़ों छोटे-छोटे
वों और बस्तियों के नाम लिखे और उनके बहुमूल्य व्यवहारों की चर्चा
उस समय हमारे देश में पौर और जानपद जीवन के बीच एक पारस्परिक
हानुभूति का समझौता था। दुर्भाग्य से उस-प्रवाह के वे तन्तु टूट गए!
मारे साहित्य का क्षेत्र भी संकुचित हो गया और हम अपनी जनता के
अधिकांश भाग के सामने परदेशों की भाँति अजनबी बन बैठे हैं। आज
नव-चेतना के पुनरुदय ने राष्ट्रीय कल्पवृक्ष को झकझोरकर पुराने विचार-
रूपी पत्तों को धराशायी कर दिया है। सर्वत्र नये विचार, नये मनोभाव
और नई सहानुभूति के पल्लव फूट रहे हैं। पौर और जनपद दोनों एक हो

पूरी ताकत से तन-मन-धन से इनी मधुर बोली के सब
कोई तरे बाकी नी रखाँगाँ। मातृ-भूमि और मातृ-भाषा
लेज़ हम स्वाभिमान का साथ देशाभिमान राखी सकाँ ह

: ऐ :

जनपद कल्याणी योजना[1]

जनपदों का साहित्यिक संगठन

मेरी सम्मति में जनपदी बोलियों का कार्य हिन्दी-म
है। वह व्यापक साहित्यिक अभ्युत्थान का एक अभिन्न
की पूर्ण अभिवृद्धि के लिए जनपदों की भाषाओं से प्रचुर
का कार्य साहित्य-सेवा का एक आवश्यक अंग समझा जा
भाव से कार्यकर्ता इस काम में लगें तो भाषा और राष्ट्र
सकता है। सेवा के कार्य से स्पर्धा या क्षति की त्रिकाल
है। अधिकार-लिप्सा और स्वार्थ-साधन की वृत्ति से पारस
हुआ करता है। चाहे जितना पवित्र काम हो, जब मलि
लेती हैं तो कार्य भी दोषावह बन जाता है। यह तो उ
एक अंग है। कवि के शब्दों में 'जड़-चेतन गुणदोष
करतार' इस नियम का अपवाद साहित्य-सेवा भी नहीं
ी भाषाओं का कार्य एकदम देवकार्य-जैसा पवित्र
। प्रतीत होता है। यह उठते हुए राष्ट्र की आ
है, क्योंकि इसके द्वारा हम कोटि-कोटि ज
प्रेरणाओं के साथ सान्निध्य प्राप्त करते चलते हैं
हित्य का जो नगरों में पाला-पोसा गया रूप है,
की भाषा में 'कुटी-प्रावेशिक' कह सकते हैं, उ

[1] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए०, पी०
प्रस्तुत।

निकलकर जनपदों की स्वच्छन्द वायु में पनपने वाले साहित्य के 'वास्तविक' स्वरूप की परख करने में हम जितने अग्रसर होंगे उतना ही जनता और साहित्यकारों के तथा लोक जीवन और साहित्य के बीच पड़ी हुई गहरी खाई को पाटकर उस पर एक नई जन-सुलभ सेतु बाँधने में सफल हो सकेंगे।

भारतीय जनता का अधिकांश भाग देहातों में है। इसकी भावना की क्रीड़ा स्थली ये देहात ही हैं। इन्हींका साहित्यिक नाम जनपद है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जनपदों की संस्कृति का अध्ययन हमारे राष्ट्र की मूल आध्यात्मिक परम्पराओं का अध्ययन है। जिनके द्वारा हमारे जीवन की गंगा का प्रवाह बाहरी कल्मषों से अपनी रक्षा करता हुआ आगे बढ़ता रहा है। व्यास और वाल्मीकि, कालिदास और तुलसी, चरक और पाणिनि, इन सबका जानपदी संस्कृति के दृष्टिकोण से हमें फिर एक बार अध्ययन करना है। किसी समय इन महासाहित्यकारों की कृतियाँ जनपदों के जीवन में बद्धमूल थीं। जिस समय वेदव्यास ने द्रौपदी की छवि का वर्णन करते हुए तीन वर्ष की श्वेत रंग वाली मस्त गौ को (सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायनी—विराट १७-११) उपमान रूप में कल्पित किया, जिस समय वाल्मीकि ने अराजक जनपद का गीत गाया, जिस समय कालिदास ने मक्खन लेकर उपस्थित हुए, ग्राम-वृद्धों से राजा का स्वागत कराया (हैयंगवीनमादाय घोष वृद्धानुपस्थितान्) और जब पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में सैकड़ों छोटे-छोटे गाँवों और बस्तियों के नाम लिखे और उनके बहुमुखी व्यवहारों की चर्चा की उस समय हमारे देश में पौर और जानपद जीवन के बीच एक पारस्परिक *सहानुभूति का समझौता था।* दुर्भाग्य से रस-प्रवाह के वे तन्तु टूट गए। हमारे साहित्य का क्षेत्र भी संकुचित हो गया और हम अपनी जनता के अधिकांश भाग के सामने परदेशी की भाँति अजनबी बन बैठे हैं। आज नव-चेतना के फगुनहटे ने राष्ट्रीय-कल्पवृक्ष को झकझोरकर पुराने विचार-रूपी पत्तों को धराशायी कर दिया है। सर्वत्र नये विचार, नये मनोभाव और नई सहानुभूति के पल्लव फूट रहे हैं। गाँव और नगर दोनों एक ही

जानपद जन

प्रियदर्शी महाराज अशोक ने गाँवों की भारतीय जनता के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया है, वह सम्मानित शब्द है 'जानपद जन'। कई वर्ष पूर्व अशोक के लेखों का पारायण करते हुए हमें इस बहुमूल्य शब्द का नवीन परिचय मिला था। सात लाख गाँवों में बसने वाली जनता को हम इस पवित्र नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। इस समय इस प्रकार के उदाशय से भरे हुए एक सरल नाम की सर्वत्र आवश्यकता है। एक ओर साहित्यिक जीवन में साहित्य सेवी विद्वान् जनपद कल्याणी योजनाओं पर विचार करने में लगे हैं, सामाजिक जीवन में नगर की परिधि से घिरे हुए नागरिक-जन विशाल लोक के स्वस्थ और स्वच्छन्द वातावरण में खुलकर श्वास लेने के लिए आकुल हैं। दूसरी ओर राजनीतिक जीवन में भी ग्रामवासी जन-समुदाय की ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ है। चिरकाल से भूले हुए, जानपद जन की स्मृति सबको पुनः प्राप्त हो रही है और जानपद-जन को पुनः अपने उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने की अभिलाषा सब जगह एक-सी दिखाई पड़ती है। प्रत्येक क्षेत्र में उठने वाले नवीन आन्दोलन की यह एक सर्वव्यापी विशेषता है।

"जैसे कोई सुपरिचित धात्री के हाथ में अपनी संतान को सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है वैसे ही मैंने राजुकों को नियुक्त कर दिया है।"

'हेवं मम लाजूक कट जानपदस हितसुखाये।'

जानपद जन के हित सुख के लिए, सम्राट् के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं :

"ये लोग बिना किसी भय के, उत्साह के साथ, मन लगाकर अपना कर्तव्य करें। इसलिए मैंने इनके हाथ में न्याय के साथ व्यवहार करने और दण्ड देने के अधिकार सौंप दिए हैं।" यह जानपद जन के लिए न्याय की प्राप्ति उनके अपने क्षेत्र में ही सुलभ कर देना सम्राट् का एक बड़ा वरदान था।

इस प्रकार प्रियदर्शी अशोक ने जानपद जन को शासन के केन्द्र में प्रतिष्ठित करके एक नवीन आदर्श की स्थापना की। जानपद जन के प्रति उनकी जो कल्याणमयी भावना थी उसीसे जनता को अभिहित करने वाले इस सरल, सुन्दर और प्रिय नाम का जन्म हुआ।

सहायक ग्रन्थ एवं सामग्री का निर्देश

१. 'मालवा में युगान्तर'—डॉ० रघुबीरसिंह।
२. 'राजस्थानी भाषा'—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।
३. 'ढोला मारू रा दूहा'—नागरी प्रचारिणी सभा।
४. 'प्राचीन भारत का इतिहास'—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय।
५. 'हिन्दी काव्य धारा'—राहुल सांकृत्यायन।
६. 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका'—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
७. 'मध्यकालीन धर्म साधना'— ,, ।
८. 'पृथिवी पुत्र'—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।
९. 'मालवी लोक-गीत'—श्याम परमार।
१०. 'निमाड़ी लोक-गीत'—रामनारायण उपाध्याय।
११. 'हुएनसांग का भारत-भ्रमण'—अनु० ठाकुरप्रसाद शर्मा 'सुरेश'
१२. 'आलीदार' (मालवी-नाटक)—डॉ० नारायण विष्णु जोशी।
१३. 'युगल विनोद'—युगलकिशोर द्विवेदी।
१४. 'गुरु ज्ञान गुटका'—सुखानन्द महाराज।
१५. 'तत्वज्ञान गुटका'—केशवानन्द महाराज।
१६. 'नित्यानन्द विलास'—नित्यानन्द जी।
१७. 'मालवी कविताएँ'—मालव-लोक-साहित्य परिषद्, उज्जैन।
१८. 'मालवा, मालव-जनपद और उसका क्षेत्र-विस्तार'—सूर्यनारायण व्यास।
१९. 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका'—(१४वाँ संस्करण)।
२०. 'गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरिज' (संख्या २० और १)।

निदानः विभाग—निरयानन्दजी।

संत सिंगाजी—सिंगाजी साहित्य शोधक मण्डल, खण्डवा

नाट्य-साहित्यः बालमुकुन्द गुरु-लिखित 'राजा भरथरी', 'गोंदावरी', 'देवर-भौजाई', 'कुँवर तेजसिंह', 'सेठ सेठानी', 'गुदगुद सालंगा', 'नागजी दूदजी' आदि, (शालिग्राम पुस्तकालय, उज्जैन)।

लेख : 'मालवी', (श्याम परमार) 'जनपद', अंक—१ (१९५२) 'जन्म-संस्कार के मालवी लोक-गीत', (श्याम परमार), 'जनपद' अंक ४ नवम्बर, ५३, 'मालव लोक-गीतों में नारी', (प्रभागचन्द्र शर्मा), 'हंस', सितम्बर, १९४०, 'बालाबक्स', 'नई धारा', अप्रैल, १९५३।

कथा-साहित्य: 'शाद रे पढा भारी करी' (धारावाहिक उपन्यास), श्री निराम जोशी 'वीणा' मासिक, १९५१-५३।

विविध : 'विक्रम' मासिक में प्रकाशित श्री चिन्तामणि उपाध्याय के लेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, 'वीणा' और 'मध्यभारत संदेश' (ग्वालियर) एवं इन्दौर के दैनिकों के विशेषांकों की सामग्री।

अंग्रेजी में प्रकाशित सामग्री

G. R. Pradhan; [illegible] Malwa' the Journal [illegible]

Shyam Parmar; [illegible]

" [illegible] 1947.

" ; 'Peasant Folk Songs', B J. Dec 5, 1948.

" ; 'Folk Songs of Savan in Malwa'; Amrit Bazar Patrika (Allahabad), Oct., 1950.

" ; 'Sauja Puja', The Hindusthan Standard, Delhi; Dec. 7, 1952.

Lekoda Survey Report by Pratibha Niketan, Ujjain

भारतीय साहित्य-परिचय
के लेखक

१. डॉक्टर शान्तिकुमार नानूराम व्यास
२. श्री नागार्जुन
३. डॉक्टर हरदेव बाहरी
४. श्री परमानन्द शास्त्री
५. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
६. डॉक्टर सत्येन्द्र
७. डॉक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित
८. श्री नरोत्तमदास स्वामी
९. डॉक्टर कृष्णदेव उपाध्याय
१०. डॉक्टर उमेश मिश्र
११. श्री श्याम परमार
१२. श्री कृष्णानन्द गुप्त
१३. श्री रामनारायण उपाध्याय
१४. डॉक्टर श्यामाचरण दुबे
१५. श्री गोपीनाथ 'अमन'
१६. श्री हंसकुमार तिवारी
१७. श्री सुरेन्द्र महन्थी
१८. श्री ज्योतेन्द्रचन्द्र चौधुरी
१९. श्री प्रभाकर माचवे
२०. श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
२१. श्री पूर्ण सोमसुन्दरम्
२२. श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'
२३. श्री एन० वी० कृष्ण वारियर
२४. श्री पी० वेंकटाचल शर्मा
२५. श्रीमती अमृता प्रीतम
२६. श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प'
२७. श्री ईश्वर बराल